गुरुतत्वम्

एवं

पादुका पञ्चकम्

(पंचवक्त्रशिवोक्तम्)

(विमलाख्यव्याख्या एवं हिन्दीव्याख्यासहितम्)

हिन्दी टीकाकार :
पं० कृष्णानन्द बुधौलिया, वेदान्तशास्त्री

प्रकाशक :
श्री पीताम्बरा संस्कृत परिषद्
पीताम्बरापीठ, दतिया (म. प्र.)

गुरुतत्वम्

लेखक : पं० कृष्णानन्द बुधौलिया, वेदान्तशास्त्री
एम. ए. (सं.), एम. ए. (दर्शन), एल एल. बी.

एवं

पादुका पञ्चकम्

(पंचवक्त्रशिवोक्तम्)

(पं० कालीचरण कृत विमलाख्यव्याख्या एवं
पं० कृष्णानन्द बुधौलिया कृत हिन्दीव्याख्यासहितम्)

卐

प्रकाशक :
श्री पीताम्बरा संस्कृत परिषद्
पीताम्बरापीठ, दतिया (म. प्र.)

प्रकाशक :
श्री पीताम्बरापीठ संस्कृत परिषद्
दतिया (म. प्र.)

प्रथम संस्करण : २००० प्रतियाँ
संवत् २०४२

मूल्य– २०) रु.

मुद्रक :
स्वाती एन्टरप्राइज
२०, ग्रेटनाग रोड
नागपुर–९

समीक्षा

पादुकापञ्चक स्तोत्र पञ्चवक्त्र भगवान शिव के मुखारविन्द से विनिर्गत होने से इसका बड़ा महत्त्व है। इसके प्रथम छः श्लोकों में गुरुतत्त्व अर्थात् पादुकाओं के ध्यान का बड़ा सुन्दर निरूपण किया गया है जो कि अन्यत्र दुर्लभ है। सातवें श्लोक में स्तोत्र के पाठ की फलश्रुति का वर्णन किया गया है, जो कि स्तोत्र के पाठ के फल की जानकारी के लिए आवश्यक है। शैव और शाक्त सम्प्रदाय के विद्वानों में इसके प्रति बहुत समादर और श्रद्धा है तथा सुरुचि-पूर्ण भावना से पाठ करने का प्राचीन काल से ही प्रचलन है। इस पर श्री कालीचरण नामक विद्वान ने प्रौढ़ संस्कृत भाषा में 'अमला' नामक टीका की रचना करके इसका विशद विवेचन किया है जो कि उच्चकोटि के संस्कृतविद्वानों को समझने के लिए तो बहुत उपयोगी है, किन्तु हिन्दी भाषा में इस महत्वपूर्ण स्तोत्र पर कोई समुचित टीका न होने से राष्ट्रभाषा हिन्दी का शिक्षित वर्ग इसका रसास्वादन कर लाभ उठाने से वञ्चित था। इस कठिनाई को समझकर पीताम्बरा पीठ दतिया के संस्थापक ब्रह्मलीन पूज्यपाद श्री १००८ स्वामीजी महाराज के प्रिय शिष्य पं. श्रीकृष्णानन्द जी बुधोलिया ने सरल एवं सुबोध हिन्दी टीका की रचनाकर इसे सामान्य हिन्दी जानने वालों के लिए भी अत्यन्त उपयोगी बना दिया है। श्री बुधोलिया जी संस्कृत, अंग्रेजी तथा हिन्दी के उच्च-कोटि के विद्वान तो हैं ही साथ ही वे योगदर्शन, तन्त्र और आगम के भी मर्मज्ञ हैं। इन सबके गूढ़ तत्वों का ज्ञान उन्होंने पूज्यपाद श्री १००८ स्वामी जी महाराज के सान्निध्य में अनेक वर्षों तक रहकर प्राप्त किया है।

श्री बुधौलिया जी ने इस स्तोत्र के संक्षिप्त होने पर भी हिन्दी टीका में अन्य उपयोगी प्रामाणिक ग्रन्थों के उद्धरणों को देकर तथा पूज्यपाद श्री स्वामी जी महाराज से प्राप्त ज्ञान का समावेश करके विषय का गहन एवं विशद विवेचन कर ग्रन्थ का स्वरूप प्रदान किया है। इस ग्रन्थ के प्रारम्भ के पृष्ठ १ से ४६ पृष्ठ तक 'गुरुतत्व' शीर्षक जो निबन्ध लिखा है उसमें गुरुतत्व के विषय में एवं स्तोत्र में वर्णित विषयों के सम्बन्ध में तथा षट्चक्र, षोडशाधार, यौगिक मुद्रायें, ध्यान और साधनाविधि, हंस मन्त्र, अजपा, त्रिकोण का स्वरूप आदि के सम्बन्ध में उपयोगी विशद विवेचन किया है जो कि लेखक के विशाल ज्ञान का परिचायक है। मैं श्री बुधौलिया जी की इस श्रेष्ठ कृति की मुक्तकण्ठ से भूरि-भूरि प्रशंसा करता हूं। यह ग्रन्थ सबके लिए परमोपयोगी, पठनीय एवं संग्रहणीय है। श्री पीताम्बरा पीठ दतिया (म. प्र.) को ऐसे उपयोगी ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए सादर धन्यवाद है।

नागपुर
५-५-८५

वैद्य मोहनलाल चतुर्वेदी
आयुर्वेदाचार्य

प्रकाशकीय

शाक्तसाधना में पादुकापञ्चक स्तोत्र का विशिष्ट स्थान है। यह रहस्यात्मक स्तोत्र है। इसका अर्थ समझना सुगम नहीं है। सहस्रार में गुरु के ध्यान में इसका उपयोग किया जाता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में सुप्रसिद्ध भाष्य के आधार पर इसके रहस्य को समझाने का प्रयास किया गया है। सहस्रार में गुरु का ध्यान किस प्रकार किया जाता है, इसका विवेचन प्रस्तुत ग्रन्थ में किया गया है। सभी साधनाओं में गुरु का महत्त्व सर्वोपरि है। प्रातः कृत्य में सभी साधक गुरु का ध्यान करते हैं। पादुकापञ्चक ग्रन्थ साधना का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है। यह लघुकाय स्तोत्र अर्थगाम्भीर्य से परिपूर्ण है। वास्तव में प्रत्येक साधक को इस ग्रन्थ का अवलोकन करना चाहिए।

प्रस्तुत अनुवाद आश्रम के ही विद्वान पं. कृष्णानन्द बुधौलिया जी ने बड़े परिश्रम से किया है। अनुवाद पूर्ण प्रामाणिक है। अनुवादक महोदय स्वयं श्रेष्ठ साधक हैं तथा आगम के विद्वान हैं। इस अनुवाद के द्वारा यह विषय सुगम हो गया है। इस महान् कार्य के लिए हम सभी अनुवादक के आभारी हैं।

विनीत
ललिता प्रसाद शास्त्री
मंत्री
श्री पीताम्बरा संस्कृत परिषद्
दतिया (म.प्र.)

अक्षय तृतीया
संवत् २०४२

विषयानुक्रमणिका

-:○:-

शोक सन्देश

श्री बुधौलिया जी की विद्वत्तापूर्ण कृति "गुरुतत्त्व एवं पादुका पञ्चक" नामक प्रस्तुत ग्रन्थ का मुद्रणकार्य चल ही रहा था कि अचानक उनके शरीरत्याग का शोकसन्देश मिलने से महान् कष्ट का अनुभव हुआ। प्रस्तुत ग्रन्थ उनके अगाध ज्ञान का परिचायक है। श्री बुधौलिया जी पूज्यपाद् श्री स्वामी जी महाराज के अनन्य भक्तों में से थे। अहर्निश अध्ययन में रत रहने वाले श्री बुधौलिया जी ने पूज्य स्वामी जी महाराज के सान्निध्य में रहकर अध्यात्म का वृहद् ज्ञान अर्जित किया था।

गुरुचरणों में उनकी अटूट श्रद्धा थी। गुरुलोक-गमन के पूर्व क्षणों में गुरुवन्दना के पद्यों की रचना का प्रयास करते हुए और "गुरुजी गुरुजी" शब्दों का गम्भीर उच्चारण करते हुए अत्यन्त शान्तभाव से श्रीगुरुचरणों में लीन हो गए।

हम श्री बुधौलिया जी को अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए श्री गुरुचरणों में प्रार्थना करते हैं कि स्व० बुधौलिया जी की आत्मा को शान्ति मिले।

प्रकाशक
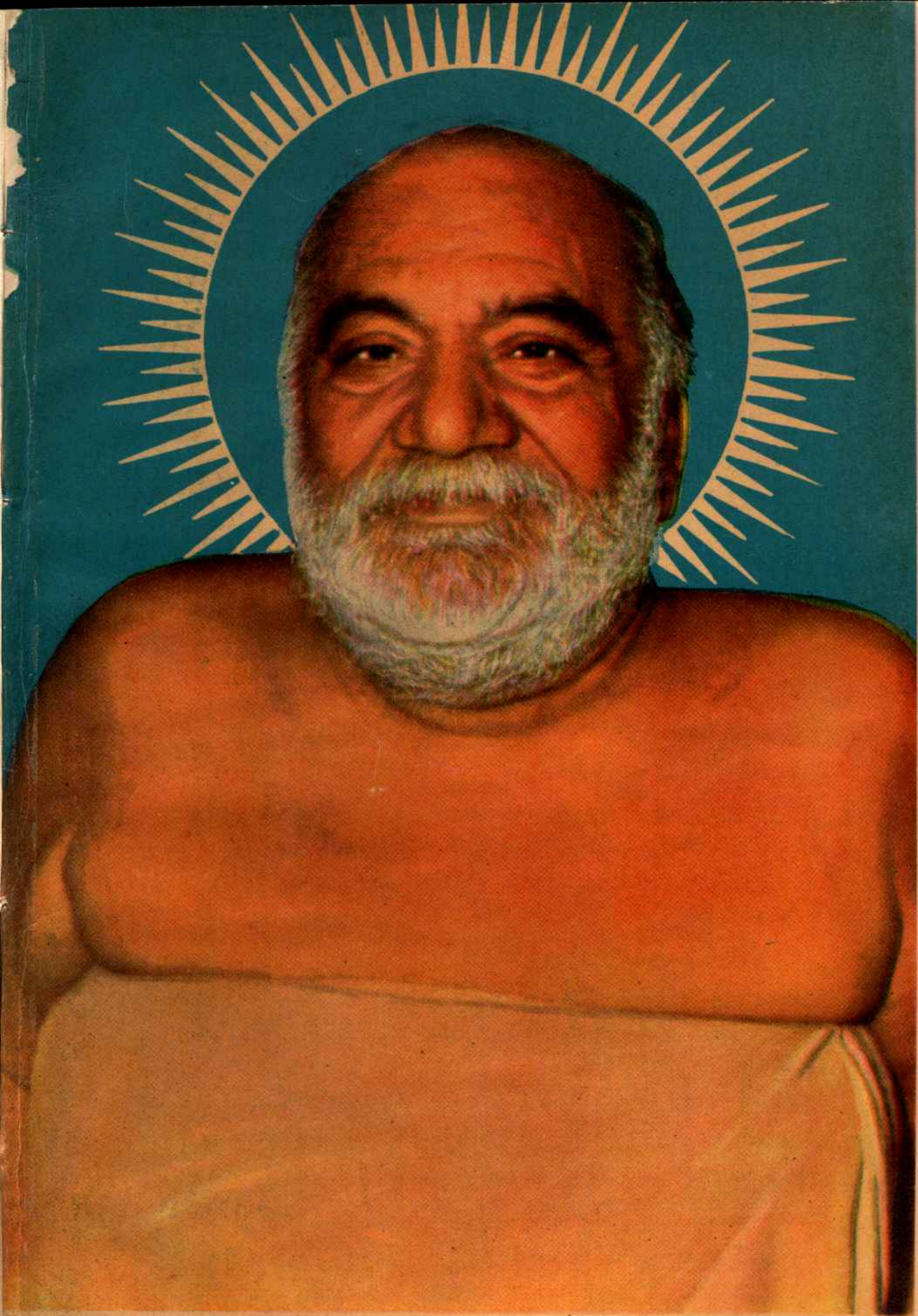
श्री पीताम्बरापीठाधीश्वराः परमपूज्य श्री १००८ श्री स्वामीजी महाराज
वनखण्डेश्वर, दतिया

गुरुतत्त्व

जन्म के पश्चात् ही गुरु का कार्य प्रारम्भ हो जाता है। प्रकृतिदत्त शक्तियों का समय-समय पर स्वयं विकास होता है तथा इन्द्रियाँ एवं अन्तःकरण का विकास होने पर ज्ञान का विकास होता है। अतः वस्तुतः प्रकृति और परमेश्वर ही वास्तविक गुरु हैं। माता, पिता, आचार्य, सान्निध्य, वातावरण, सङ्ग आदि भी शिक्षक हैं। जिस प्रकार ईश्वर प्रदत्त शक्तियों से सांसारिक एवं व्यावहारिक ज्ञान की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार अध्यात्म शक्तियों का विकास भी ईश्वरीय प्रदत्त प्रेरणाओं से होता है। यहाँ इस शरीर में ही ईश्वर गुरु के रूप में विराजमान हैं, जिसका शास्त्रों में पूर्ण विवेचन किया गया है। आगम एवं तन्त्र में गुरु तत्त्व का गहराई से चिन्तन उपलब्ध है। सर्व सिद्धिदायक गुरु का स्थान सहस्रार प्रदेश है। पर शिव का ही दूसरा नाम गुरु है। आचार्य अभिनव ने तन्त्रसार में लिखा है कि सांसारिक मनुष्यदेह में अवतरित गुरु भी दो प्रकार के होते हैं– (१) प्रातिभ गुरु और (२) सद्गुरु।

जिन्हें शास्त्र, आचार्य आदि की अपेक्षा के विना ही शक्तिपात वश आत्मस्वरूप का प्रातिभ ज्ञान हो जाता है, उन्हें प्रातिभ गुरु वाह्य संस्कारों के विना ही भोग एवं अपवर्ग प्रदान करने में सक्षम हो जाते हैं। ऐसे गुरु में सामर्थ्य की सीमा नहीं कही जा सकती। किन्तु यहाँ भी इच्छा के वैचित्र्य से तारतम्य का सद्भाव देखा जाता है। जिसमें प्रतिभा का अंश जितना बली होता है, गुरु भी उतने ही बलशाली होते हैं। कुछ मन्द शक्तिपात के कारण सद्गुरु का आविर्भाव होता है। सद्गुरु समस्त शास्त्र-ज्ञान एवं तत्व ज्ञान से

पूर्ण भगवान् भैरव ही हैं। इसी प्रकार शक्तिपात के क्रमानुसार गुरुपद का भी क्रम है। ऊर्ध्व शासनस्थ गुरु अध: शासनस्थ गुरुओं को अनुप्राणित करते रहते हैं। इस लिए देशिक, आचार्य, दीक्षक, चुम्बक आदि नामों से गुरु पद का बोधन होता है। इनमें पूर्ण ज्ञानी ही सर्वोत्तम हैं। हमारे परमपूज्य गुरु श्रीस्वामी जी महाराज को शक्तिपातवश ही पूर्ण शास्त्र, वेद, आगम, तन्त्र का ज्ञान था, साथ ही शिव की पूर्ण अनुभूति होने से वे शिवत्व को प्राप्त कर चुके थे। वाह्य संस्कारों के बिना ही केवल प्रतिभा से ही उनको पूर्ण ज्ञान का उदय हुआ, अत: वे प्रातिभगुरु की श्रेणी में हैं तथा शिवस्वरूप होने से भोग एवं अपवर्ग के दाता हैं।

मनुष्य चर्मणवद्धः साक्षात्परशिवः स्वयम्।
सच्छिष्यानुग्रहार्थाय गूढं पर्यटिति क्षितौ ॥
अत्रिनेत्रः शिवः साक्षात् साक्षादचतुर्बाहुरच्युतः।
अचतुर्वदनो ब्रह्मा श्रीगुरु कथितः प्रिये ॥
गुह्यागमार्थ तन्मत्र साधनोद्वोधनादपि।
रुद्रादि देव रूपत्वाद् गुरुरित्यभिधीयते ॥

श्री स्वामी जी महाराज मनुष्य शरीर में स्वयं साक्षात् शिव थे, जिन्होंने शिष्यों के अनुग्रह के लिए इस पृथ्वी मण्डल पर विचरण किया। वे अत्रिनेत्र होते हुए भी साक्षात् शिव थे, अचतुर्बाहु होते हुए भी अच्युत् अर्थात् विष्णु के समान थे। अचतुर्मुख होकर भी व्रह्मा थे। आगम शास्त्र का अर्थ, उसके मन्त्र, उनकी सिद्धि के साधन का बोध कराने के कारण एवं रुद्र आदि देव रूप होने से उनको गुरु नाम से कहा गया है।

अध्यात्म मार्ग में गुरु ही जगत का मूल हैं, तप का मूल भी गुरु ही हैं। गुरु के प्रसाद से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। सर्वार्थ साधक साक्षात् शिव ही गुरु हैं। गुरु ही परमतत्त्व हैं। शास्त्रज्ञान गुरु के आधीन है, विना गुरु की कृपा के कोटि पुरश्चरण भी

निष्प्रभाव हैं। अतएव तन्त्रशास्त्र में विशेषतया गुरु के बिना अधिकार नहीं प्राप्त होता है। इस लिए साधक को उत्तम गुरु की खोज में रहना चाहिए। शास्त्र में ऐसा भी कहा है कि गुरु स्वयं योग्य शिष्य को पकड़ लेते हैं।

गुरु चार प्रकार के कहे गए हैं-- (१) गुरु, (२) पर गुरु, (३) परापर गुरु, (४) स्व गुरु। बृहन्नीलतन्त्र में शिव ने पार्वती से गुरु के सम्बन्ध में निर्णय व्यक्त किया है :--

"परापर गुरूणां च निर्णयं श्रृणु पार्वति।
आदौ सर्वत्र देवेशि मन्त्रदः परमो गुरुः॥
परापर गुरुस्त्वं हि परमेष्ठी त्वहं गुरुः।
सर्वं गुरुमुखाल्लब्धं सफलं स्यान्न चान्यथा॥"

अर्थात् पर एवं अपर गुरुओं के सम्बन्ध में पार्वती को भगवान् शिव अपना निर्णय बताते हैं कि आदि में मन्त्रदाता परम गुरु हैं। हे पार्वती ! तुम स्वयं परापर गुरु हो और मैं (स्वयं शिव) परमेष्ठि गुरु हूँ। गुरुमुख से श्रवण किया हुआ ही सफल होता है। इसी कारण सद्गुरु को ब्रह्मानन्द स्वरूप परम सुखद ज्ञानमूर्ति निरूपित किया गया है। गुरुपद द्वन्द्वातीत है, गुरुतत्त्व गगनसदृश है जिसका निर्देश 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों के द्वारा किया गया है। गुरु नित्य, विमल एवं अचल सर्वधी साक्षिरूप हैं। गुरु को भावों के अन्तर्गत सीमित नहीं किया जा सकता। ये भावातीत हैं अतः त्रिगुण रहित हैं।

ऐसे गुरु से साक्षात्कार होता है। इनका स्थान साधक के अन्तः में है। शिरस्थ सहस्रार पद्म में चन्द्रमण्डल है उसमें अ, क, थ आदि तीन रेखाओं से युक्त त्रिकोण है जिसमें हंस मन्त्र का स्थान है वहां रजताचल के सदृश शोभायमान स्मितमुख पद्मासनस्थ निज गुरु का ध्यान करना चाहिए। यहां इस स्थान पर परमानन्द रस से परिपूर्ण गुरु को नाम से साधक स्मरण करें।

गुरु की दिव्य, सिद्ध एवं मानव भेद से तीन श्रेणियाँ हैं। परम्परागत इनके नाम हैं :— १. परमशिवानन्दनाथ, कौलेश्वरानन्दनाथ, कुलेश्वरानन्दनाथ, दिव्यौघ। २. सिद्धनाथ, आनन्दनाथ, सिद्धानन्दनाथ, परमेष्ठिनाथानन्दनाथ, श्रीकण्ठानन्दनाथ नामक सिद्धौघ हैं। ३. मानवौघों की परम्परा में गगनानन्दनाथ आदि हैं (देखिए- बगलामुखी रहस्यम् पृष्ठ १२२)।

शिर: स्थित पद्म में श्रीगुरु के उपर्युक्त स्वरूप का साङ्गोपाङ्ग वर्णन पादुकापञ्चक ग्रन्थ में है, अतः यहाँ पादुकापञ्चक ग्रन्थ का संस्कृत एवं हिन्दी टीका सहित सम्पादन किया जाता है, एवं गुरुपद् की साधना के लिए षट्चक्र और सहस्रार का ज्ञान आवश्यक है अतः साधक के लिए इनका किञ्चित् विश्लेषण किया है।

उपर्युक्त गुरुतत्त्व निरूपण से यह स्पष्ट हो गया है कि शिव ही गुरु के रूप में अवतरित होते हैं तथा गुरु ही शिवरूप में प्राणिमात्र के शिरःस्थान में चिन्मय स्वरूप में स्थित हैं, अतः गुरु और शिव में कोई अन्तर नहीं है। " **अन्तरं नैव पश्यामि गुरोरपि शिवस्य च** "। जिस देवता का साक्षात्कार करना है उसको कहीं ढूंढ़ने दूर नहीं जाना है, गंगास्नान, व्रत, तीर्थ आदि नहीं करना है। लिखा है :-

" य एष देवः कथितो नैव दूरेऽवतिष्ठते।
शरीरे संस्थितो नित्यं चिन्मात्रमिति विश्रुतिः ॥"

षट्चक्रचिन्तन

गुरु के साक्षात्कार को सरल बनाने के लिए साधक को अपने शरीर का ही थोड़ा ज्ञान प्राप्त करना है। शरीर में वायु की सञ्चरण व्यवस्था इडा, पिङ्गला एवं सुषुम्ना नाडियों के अन्तर्गत है। इडा और पिङ्गला के द्वारा वायु का प्राण-अपान रूप सञ्चार होने पर संसार की सृष्टि होती है यही जीव की स्थिति है। सुषुम्ना नामक नाडी ही तीसरा नेत्र है इसके उदय होने पर काम भस्म हो

जाता है एवं शिवत्व की स्थिति प्राप्त होती है। प्राण-अपान का निरोध होने पर इस सुषुम्ना नामक तृतीय नेत्र का उदय होता है, अतः यहाँ सृष्टि का उदय-अस्त क्रम समाप्त हो जाता है एवं गुरु के वास्तविक, निरञ्जन, निर्गुण, निराकार रूप का दर्शन होता है। तीनों नाडियों में सुषुम्ना ही मुख्य है। इसके अन्तर्गत एक चित्रा नाम की नाडी है जिसके अन्तर्गत पञ्चभूतों के अधिदेवता, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव की स्थिति है। चित्रा नामक इस सूक्ष्म नाडी के अन्तर्गत ही योगी स्वान्तःस्थ ब्रह्म का चिन्तन करते हैं।

षोडशाधार :–

योग शास्त्र में चिन्तन के लिए उपयुक्त तथा वायु को निरुद्ध करने एवं मनतत्व पर विजय प्राप्त करने के लिए शरीरस्थ सोलह आधारों की चर्चा की गई है। इन सोलह आधारों के ज्ञान प्राप्त किए विना कोई साधक योग की सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता।

पूज्यपाद श्री स्वामीजी के 'योग विधि वर्णनम्' के अन्तर्गत योनि मुद्रा निरूपण में सोलह आधारों की चर्चा की गई है। १. मूलाधार, २. स्वाधिष्ठान, ३. मणिपूर, ४. अनाहत, ५. विशुद्धि, ६. आज्ञा नामक षट्चक्र हैं इनसे ऊपर, ७. विन्दु, ८. कला पद, ९. निवोधिका १०. अर्धचन्द्र, ११. नाद, १२. नादान्त, १३. शक्ति, १४. व्यापिका, १५. समना, १६. उन्मना नामक सोलह आधार हैं। प्राण कुण्डलिनी जब मूलाधार से उर्ध्व स्थानों के लिए प्रस्थान करती है तब उत्तरोत्तर सूक्ष्मगति को प्राप्त होकर अन्ततः उन्मनी को पारकर विष्णुवक्त्र अर्थात् ध्रुव माण्डलिक शिव को प्राप्त करती है। यहीं गुरु अर्थात् पर शिव का स्थान है। अतः मूलाधार से आरम्भ कर उन्मनी पर्यन्त सोलह आधारों की चर्चा आगे करते हैं।

यह षोडशाधार तीन भागों में विभक्त है– १. प्रथम मूलाधार से विशुद्धि चक्रतक पांच चक्र पञ्चभूतात्मक हैं अतः शरीर का यह

भाग स्थूल कहा गया है। २. द्वितीय सूक्ष्म शरीर है। आज्ञा चक्र मन तत्व का स्थान है जो सूक्ष्म है अतः यहाँ सूक्ष्म शरीर का अवस्थान है। सूक्ष्म से अभिप्राय है "ब्रह्मनाडी गतं प्राण ब्रह्मरूपम्।" ३. तीसरा है कारण शरीर जो विन्दु से विष्णुवक्त्र पर्यन्त है। यह पर नाम से भी प्रसिद्ध है। पर से अभिप्राय है-- "परं चानवच्छिन्नं विश्वात्मं चिदानन्दघनम्।" यह स्थान अनवच्छिन्न, विश्वात्म, चिदानन्दघन आत्मरूप है। इसके आगे कुछ नहीं है। स्वयं विश्व का मूल होने से इसका अन्य कोई मूल नहीं है। दिक्, काल, आकार से परे है। न यहाँ शब्द की गति है और न ही यह आकाशरूप है। कहा है :-

"यस्य नाग्रं न मूलं च न दिशो न विदिशस्तथा।
न शब्दो नापिचाकाशं ध्यात्वा तत्तु विमुच्यते॥"

मूल आदि क्रम से षोडश आधारों का किञ्चित् विवरण करते हैं। श्री स्वामीजी द्वारा बगलामुखी रहस्य में तथा षट् चक्र निरूपण की पूर्णानन्द यति विरचित टीका में षोडशाधार निरूपित करने के लिए निम्नलिखित प्रमाण उद्धृत हैं:-

"मूलाधारं स्वाधिष्ठानं, मणिपूरम् अनाहतम्।
विशुद्धं आज्ञाचक्रं च विन्दुर्भूयः कलापदम्॥
निबोधिका तथोर्ध्वेन्दु नादोनादान्त एव च।
उन्मनीं विष्णुवक्त्रं च ध्रुव माण्डलिकः शिवः॥
इत्येतत् कथितं देवि षोडशाधारमुत्तमम्॥"

आगे स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण (परं) क्रम से षोडशाधारों का विवरण दिया जाता है।-

मूलाधार :-

मूलाधार में चार दल हैं। पीत वर्ण है। वं, शं षं, सं चार वर्णों का समावेश है। इसका लं पार्थिव वीज है। यह चतुष्कोणा-

त्मक है। चक्र के अधिपति देवता ब्रह्म-स्वयम्भू-लिङ्गात्मक ज्योति हैं। डाकिनी शक्ति है। सार्धत्रिवलयाकार कुण्डलिनी का यहाँ निवास है। मूलाधार में ही कुण्डलिनी का ध्यान होता है। अविद्या के कारण यहां शक्ति को प्रसुप्त कहा गया है। हंस मन्त्र अथवा हुंकार बीज से यह जागृत होती है। यहाँ दो मूहूर्त नित्य अभ्यास करने से नाद की अभिव्यक्ति, अग्नि की दीप्ति, नैरुज्य, अतीत-अनागत का ज्ञान, अश्रुत शास्त्रों का बोध होता है। यहां स्तम्भन एवं क्षोभ दोनों ही होते हैं। अतः बगला का मुख्य चिन्तन स्थान है। यहाँ वाणी के आविर्भाव का मूल स्रोत है, जिसको 'वाग्भव कूट' नाम से शाक्त जानते हैं। 'ऐं' वाग्भव कूट का बीजमन्त्र है। अतः बगला के बीज 'ह्लरीं' के साथ इसका उच्चारण होता है।

स्वाधिष्ठान :–

मूलाधार से ऊपर स्वाधिष्ठान का स्थान है। यहाँ 'बं भं मं यं रं लं' छः वर्णों का उदय होता है। विष्णु-देवता, राकिणी देवी है। वारुण वं बीज है। यहां चिन्तन करने से साधक जरारहित हो जाता है।

मणिपूर :–

इससे ऊपर नाभिस्थान में मणिपूर नामक त्रिकोणाकार चक्र है। इसका तत्त्व अग्नि है। रं बीज है। नील वर्ण है। शिव देव एवं लाकिनी देवी है। यहाँ अभ्यास करने से आकर्षण, वशीकरण, तिरस्करण विद्या की सिद्धि होती है। डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं दश वर्णों का समावेश है।

अनाहत :–

चतुर्थ अनाहत चक्र है। मणिपूर से ऊपर हृदय प्रदेश में इसकी स्थिति है। रक्तवर्ण है। षट्कोण यन्त्र है। यं वायुबीज है। ईश्वर देव एवं काकिनी देवी है। कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं

द्वादश वर्ण हैं। वाण नामक लिङ्ग है। यहाँ चिन्तन करने से साधक त्रिकालदर्शी हो जाता है।

विशुद्धि चक्रः–

पञ्चम चक्र विशुद्धि नामक कण्ठ देश में स्थित है। यह चक्र वृत्ताकार धूम्र वर्ण है। हं व्योमात्मक बीज है। यहाँ पर अणु परिमाण में जीव का निवास है। शाकिनी देवी एवं सदा शिव देव हैं। अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः क्रम से वर्णों का न्यास है। यहाँ चित्त एकाग्र करने पर योगी त्रिकालदर्शी, रोग रहित और चिरजीवी हो जाता है।

यहाँ तक पञ्चभूतात्मक स्थूल चक्रों का समावेश है। इनके बाद आज्ञा चक्र में सूक्ष्म का क्षेत्र प्रारम्भ होता है।

(बगलामुखी रहस्यं से अनूदित)

आज्ञाचक्र (सूक्ष्म निरूपण) :–

इन चक्रों के ऊपर आज्ञा चक्र में सूक्ष्म की ओर प्रगति होती है। यहाँ पर गुरु का आदेश प्राप्त होता है. अतः इस चक्र का नाम आज्ञा चक्र है। यहाँ प्रकृति एवं पुरुष दो तत्वों का समावेश है जिनके द्योतक हं एवं क्षं वर्णद्वय हैं। यहाँ पर पचाश वर्णों का अन्त हो जाता है एवं पुं प्रकृति का विभाजित रूप हं क्षं का उद्रेक कहा गया है। मातृका चक विवेक के अनुसार यही वह स्थान है जहाँ शिव और शक्ति उभय का प्रत्यक्ष दर्शन होता है। ऊपर की ओर चन्द्र मण्डल में प्रयाण करने पर शिव के अन्तः में शक्ति का विलय हो जाता है। अतः केवल शिव का दर्शन होता है तथा अधःपात होने पर मूलाधार में प्रकृति का औल्बण्य अर्थात् प्राधान्य के कारण केवल शक्ति का परा के रूप में दर्शन होता है। यहाँ शक्ति का पूर्णत्व प्रकट होता है तथा शिव का अवस्थान शक्ति के अन्तः में होता है। शिव-शक्ति उभय के प्रत्यक्ष दर्शन होने के कारण आज्ञा चक्र को ही प्रधानता दी गई, जिसको प्रयाग के समान गंगा-यमुना

के संगम के रूप में पवित्रतम स्वीकार किया गया है, जहाँ स्नान करने से जीव की मल से शुद्धि होकर निर्माल्य की प्राप्ति होती है। आज्ञाचक्र में ही वस्तुतः सूर्य-चन्द्र नाड़ियों का संगम होकर सुषुम्ना के रूप में उदय होता है। अतः योगियों के लिए इस चक्र का विशेष महत्व है। सौन्दर्यलहरी की लक्ष्मीधरा टीका में आज्ञा का अर्थ ईषत् ज्ञान में किया गया है। अर्थात् आज्ञा चक्र में प्रवेश करने पर परमशिव का किञ्चित् ज्ञान होता है। कुण्डलिनी सहस्रार में शिव से मिलन के लिए आतुर होती है, अतः यहाँ आज्ञा चक्र में शिव की केवल अल्प झलक प्राप्त करती है।

"अत्र आङ ईषदर्थः ज्ञा ज्ञानम्, ईषद्ज्ञानं यत्र जायते साधकानां भगवती विषयम्। ब्रह्मग्रन्थि भेदनाति व्यग्रतया भगवत्या आज्ञाचक्रे क्षणमात्रावस्थानात् साधकानां तडिल्लेखारूपेण अवभासनात् आज्ञाचक्र नामास्य।"

हमारे गुरुदेव जी महाराज ने आज्ञा का अर्थ आ समन्तात् किया है। अर्थात् इस स्थान पर जब योगी पहुँचता है तब चारों ओर शिव का प्रकाशमान स्वरूप प्रकट होता है। अतः कुण्डलिनी वेग से शिवत्व में विलीन होने के लिए प्रयास करती है। यहाँ से नवनाद का क्षेत्र आरम्भ होता है जो विन्दु, अर्धचन्द्र, रोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिका, समना एवं उन्मना नाम से प्रसिद्ध है। आगे शिव वक्त्र है जहां कुण्डलिनी के स्थूल, ज्योतिर्मय रूप का शिव के सहज प्रकाशमय रूप में विलय हो जाता है। आज्ञा चक्र से ऊपर नवनादात्मक विश्रान्ति स्थलों में ही मनोचक्र एवं सोमचक्र कहे गए हैं। इनकी चर्चा पादुका पञ्चक में नहीं की गई है, तथापि गुरुतत्व को समझने में यह सहायक है। आज्ञाचक्र के मनोचक्र में एकादश इन्द्रियों, अन्तःकरण चतुष्टय सहित स्वप्न और निद्रा का स्थान है। इसके ऊपर सोमचक्र है। इस क्षेत्र में निरालम्बपुरी है। जहाँ योगी को ईश्वर का दर्शन होता है।

आज्ञाचक्र का स्थान तालु एवं कण्ठ से ऊपर दोनों भ्रू प्रदेश के मध्य में है, जहाँ पर ह क्ष वर्णों से युक्त मनोपद्म की प्रतिष्ठा है। यह स्थान हिमकर सदृश शुक्लवर्ण का है। यही तेजोरूप शक्ति की प्रकाशस्थली होने से प्रकाशात्मक ध्यान धाम कहा गया है। हाकिनीदेवी का यही ध्यानस्थल है।

यहाँ मनोचक्र के अन्तर्गत ही इतर लिङ्ग तथा प्रणव का स्थान है। प्रणव ही वेदों का बीज है। इतर लिङ्ग, वेदादि बीजरूप प्रणव का स्थिरतर ध्यान यहीं होता है। इतर लिङ्ग इस लिए कहा जाता है कि यहाँ इं अर्थात् काल को भी योगी पार कर जाता है तथा लिङ्गाकार प्रकाश का दर्शन होता है। "**इं कालं तरतीति इतरं परशिवस्य पदं। लीनं वाह्येन्द्रियागोचरं चिद्रूपमर्थं गमयन्तीति लिङ्गानि।**" अर्थात् जिसके द्वारा वाह्य इन्द्रियों से अगोचर चिद्रूप अर्थ का ज्ञान होता है उसको लिङ्ग शब्द से कहा गया है। इसके ऊपर अर्धचन्द्र के रूप में अवान्तर नाद है इस स्थान पर योगी योनि-मुद्रा के द्वारा वायु को सम्यक् प्राण और मन के एकीकरण से एवं ओं का स्मरण करता हुआ अग्नि के स्फुलिंगों को ध्यान में देखता है। यहाँ सम्प्रज्ञात समाधि की अनुभूति होती है। वह्निकणों के दर्शन के पश्चात् अभ्यास से ज्वलद्दीप के ज्योति की अनुभूति होती है।

इस पद्म से ऊपर परमशिव की स्थिति है जहाँ शम्भु के हंस रूप दो बीजों का साकार दर्शन होता है। कहा है :--

"**शम्भु बीजं हि तन्मध्ये साकारं हंस रूपकम्।**"

तथा "**एवं हंसो मणिद्वीपे तस्य क्रोडे परः शिवः।**
वामभागे सिद्धकाली सदानन्दस्वरूपिणी॥"

यहाँ सहस्रार के उपक्रम से दो बिन्दुओं के मध्य विसर्ग के अव्यय रूप का दर्शन होता है। विसर्ग के दो विन्दुओं के मध्य

शून्य प्रदेश में परमनामक शिव का स्थान है। यहाँ शिव शक्ति का मायात्मक बन्धन से आच्छादन होने से मकारात्मक परं बिन्दु के रूप में स्थिति समझनी चाहिए। वस्तुतः यह दर्शन सहस्रार में होता है। जैसा स्वरूप सहस्रार में, वैसा ही रूप यहाँ आज्ञाचक्र में आकांक्षा के कारण दर्शाया गया है।

आज्ञा चक्र में स्थित बिन्दुरूप में भगवान् विष्णु के स्थान पर प्राण को आरोपित जब योगी प्राण त्यागता है तब वह निश्चित रूप से परमपुरुष में प्रविष्ट हो जाता है।

यहाँ उपयोगो होने से प्रणारोपण के प्रकार का किञ्चित् विवरण दे रहे हैं :–

योगी आपने प्राण के प्रयाण के समय को जानकर आनन्दयुक्त मन से योगासन पर आसीन होकर कुम्भक के द्वारा वायु का निरोध कर हृदय में स्थित जीव को मूलाधार में लाकर गुदा के आकुञ्चन के द्वारा विधिपूर्वक अर्थात् मूलबन्ध, उड्डीयान बन्ध और जालन्धर बन्ध के द्वारा कुण्डलिनी को उत्थापित कर मूलाधार से सहस्रार तक प्रसरित आनन्दरूप तडिताकार कुण्डलिनी मय सूत्र रूप नाद का ध्यान कर, प्राणरूप श्वास परमात्मक हंस का उस नाद में विलय कर, जीव के सहित चक्र के भेदनक्रम से आज्ञा चक्र तक लाकर, वहाँ स्थित कुण्डलिनी में स्थूल सूक्ष्म क्रम से पृथ्वी आदि प्रपञ्चसमुदाय का विलय कर उसको पुनः जीवात्मा के सहित वहाँ स्थित शिवशक्तिमय बिन्दु से एकाकार कर योगी निश्चल बैठे। इसके पश्चात् ब्रह्मरन्ध्र को भेद कर देह का परित्याग करे। इस प्रकार करने से योगी ब्रह्म में लीन हो जाता है।

उपर्युक्त वर्णन षट्चक्र निरूपण पर श्री पूर्णानन्द यति द्वारा कृत टीका के आधार पर किया गया है। ३२ से ३६ तक श्लोकों के सारांश के रूप में आज्ञाचक्र का निर्णय देते हैं। आज्ञाचक्र में ह क्ष दो दल हैं, शुक्लवर्ण है, हाकिनी शक्ति है जिसके रक्तवर्ण

और षड् मुख हैं, तीन नेत्र हैं, षड् भुजाएँ हैं । वराभय, अक्षमाला, कपाल, डमरू और पुस्तक हाँथों में है तथा शुक्ल पद्म पर आसीन हैं । इसके ऊपर विद्युताकार त्रिकोण में शुक्लवर्ण इतर लिङ्ग है । इससे ऊपर त्रिकोण में प्रणवाकृति अन्तरात्मा प्रदीप की ज्योति की आभा के समान है । इसके चारों दिशाओं में ज्योति स्फुलिङ्गों से आवेष्टित है । जलते हुए दीप के समान स्वतेज से मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक चक्रों को प्रकाशित करती है । इससे ऊपर मन का सूक्ष्मरूप में अवस्थान है । इससे ऊपर हंस से क्रोडीकृत चन्द्रमण्डल है जहाँ शक्ति सहित परम शिव का स्थान है ।

आज्ञा चक्र से ऊपर तथा सहस्रार से नीचे अवान्तर कारण शरीर है । आज्ञा चक्र में उचित सेवाकर जब योगी का मन गुरु चरणों में एकाग्र हो जाता है तब वह आज्ञा चक्र से ऊपर महानाद के स्वरूप का अवलोकन करता है, जहाँ अभ्यास करने से वाक्सिद्धि प्राप्त हो जाती है । यहाँ महानाद स्थान में वायु का लय हो जाता है । यह नियम है कि जहाँ से जिसकी उत्पत्ति होती है उसी में उसका लय भी होता है, यहाँ महानाद में शक्ति का आकार शिवमय हो जाता है जैसा कि प्रयोग सार ग्रन्थ में लिखा है :--

"नादात्मना प्रवुद्धा सा निरामय पदोन्मनी ।
शिवोन्मुखी यदा शक्तिः पुंरूपा सा तथा स्मृता ।।"

राघव भट्टने भी लिखा है कि शक्ति की यहाँ नाद बिन्दुमय सृष्टि में उपयोगी स्वरूप का आविर्भाव होता है । बस्तुतः नाद ही घनत्व अवस्था में बिन्दुरूप हो जाता है । नाद बिन्दु के रूप में शक्ति का ही आविर्भाव होता है, जैसे स्वर्ण ही कुण्डल आदि के रूप में परिणत हो जाता है । निष्कर्ष यह है कि नाद–बिन्दु का एकाकार रूप ही शक्ति का स्वरूप है । जो साधक समाधि योग का अनुशीलन करते हैं उनके लिए आवश्यक है कि वे समाधि काल से पूर्व समस्त तत्वों का प्रयत्न पूर्वक चिन्तन कर सब को स्थूल सूक्ष्म

क्रम से चिदात्मा में विलय कर दे। यहाँ स्थूल सूक्ष्म रूप सृष्टि-प्रपञ्च के चिन्तन का विधान है अतः इनका यथोचित ज्ञान होना साधक के लिए आवश्यक है। अतः किञ्चित् निरूपण करते हैं। पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश पञ्च-स्थूल तत्त्व हैं जिनका क्रम से मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि चक्रों में अवस्थान है। तत्तत् स्थानों में इनका आश्रय है, अतः मूलाधार नामक भूमण्डल में पाद, घ्राण, एवं गन्ध तीन तत्त्वों की स्थिति है। स्वाधिष्ठान नामक जल मण्डल में पाणि, रसना, एवं रस तत्व का, मणिपूर नामक वह्नि मण्डल में पायु, चक्षुरिन्द्रिय एवं रूप तत्त्व का, अनाहत नामक वायु मण्डल में उपस्थ, त्वग् एवं स्पर्श तत्त्व का, विशुद्धि नामक नभो मण्डल में वाक्, श्रोत, इन्द्रिय एवं शब्द तत्व का अवस्थान नियत है। पृथ्वी आदि पञ्चतत्वों, एकादश इन्द्रियों तथा अन्तः करण को सम्मिलित कर इनकी संख्या बीस है, यह स्थूल तत्व है।

आगे सूक्ष्म के स्वरूप का विधान किया जाता है। आज्ञा चक्र में स्वयं मन की स्थिति है। यह सूक्ष्म रूप है। इसके अतिरिक्त यहाँ बुद्धि, प्रकृति एवं अहंकार से युक्त परम तेजस की स्थिति है। बुद्धि आदि में यहाँ जन्यजनक भाव है। मूलभूत अव्यक्त की विकृति से महत्तत्व एवं महत्तत्व से अहंकार की उत्पत्ति होती है। महत्तत्त्व का ही दूसरा नाम बुद्धि है। "सैव बुद्धिर्महन्नाम तत्त्वं सांख्यैः प्रतीयते।"

कारण शरीर :-

यहाँ तक स्थूल एवं सूक्ष्म की चर्चा आज्ञा चक्र पर्यन्त की गई है। आज्ञा के ऊपर कारण स्वरूप का स्पष्टी करण प्रस्तुत है। भ्रू मध्य से ऊपर ललाट प्रदेश में इन्दु, उससे ऊपर बोधिनी, ततः अर्धचन्द्राकार नाद, इसके ऊपर लाङ्गलाकृति महानाद, उसके ऊपर कला (समना) तथा कला से ऊपर उन्मनी का स्थान है।

भूत शुद्धि तन्त्र एवं बृहत् त्रिविक्रम संहिता में विन्दु की स्थिति बोधिनी से नीचे कही गई है एवं नाद की उससे ऊपर। इस प्रकार विन्दु, बोधिनी एवं नाद तीनों एकत्र विन्दुमय परशक्ति के स्वरूप विशेष हैं। शारदा तिलक में कहा है कि सच्चिदानन्द परमेश्वर के सकल वैभव से शक्ति, शक्ति से नाद, तथा नाद से विन्दु की उत्पत्ति होती है। यह परशक्तिमय विन्दु पुनः नाद, विन्दु एवं बीज नामक तीन भागों में विभक्त होता है। विन्दु नादात्मक निरूपित किया गया है। बीज शक्ति का रूप है तथा नाद को उभयात्मक कहा गया है।

परशिव परशक्तिमय है अतः विन्दु को शिवशक्तिमय कहा गया है। ललाट प्रदेश से ऊपर स्थित यह विन्दु नादात्मक शिव का स्वरूप है। वीज शक्ति है जो वोधिनी का रूप है। विन्दु एवं वीज का समवाय सम्बन्ध नाद है। अतः क्षोभ्य एवं क्षोभक का स्वरूप होने से यह क्रियात्मक कहा गया है। महानाद इसके ऊपर है। इससे ऊपर कला है।

समस्त तत्वों की संघातभूता सृष्टि की अधिष्ठातृ सच्चिदानन्द स्वरूपिणी नित्या प्रकृति को परमशिवसर्ग के आदि में व्यक्त करता है। शिव-शक्ति के अव्यक्त समायोग रूप परमेश्वर से आद्या शक्ति की व्यक्ति होती है। इसका नाम त्रिपुरसुन्दरी है। इस शक्ति से ही नाद तथा नाद से विन्दु की उत्पत्ति कही गयी है।

उन्मनी का स्थान इस शक्ति स्थान से ऊपर है। मन की गति समना शक्ति पर्यन्त है। इसके ऊपर उन्मनी में मन का कार्य समाप्त हो जाता है। उन्मनी का लक्षण कहा है :—

"यत्र गत्वा तु मनसो मनस्त्वं नैव विद्यते।
उन्मनी सा समाख्याता सर्व तन्त्रेषु गोपिता॥"

उन्मनी अवस्था में मन का विषयों से अवलम्बन (सम्पर्क) का सामान्य अभाव हो जाता है। उन्मनी कुण्डलिनी शक्ति दो प्रकार

की है। एक सहस्रार की आधारभूत निर्वाणकला का स्वरूप है, दूसरी सहस्रारस्थित वर्णावली का रूप है। सहस्रार इसलिए कहा जाता है कि इसमें सहस्र अक्षरों का समावेश है।.... अनुलोम-विलोमक्रम से बीस बार वर्णमाला का जप करने से सहस्रार का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। (बगलामुखी रहस्यम् से उद्धृत)।

उन्मनी को सप्तदशी अर्थात् सत्रहवीं कला भी कहा गया है, जैसा कि कङ्कालमालिनी तन्त्र में लिखा है–

"सहस्रारं कर्णिकायां चन्द्रमण्डल मध्यगा।
सर्वसङ्कल्प रहिता कला सप्तदशी भवेत्॥
उन्मनी नाम तस्या हि भवपाश निकृन्तनी॥"

शक्ति का वर्णमालामय स्वरूप भी है। वर्णमाला का स्मरण भी मोक्षदायक है। वर्णमाला स्वरूप शक्ति को त्रिकोण-अकथ कहा जाता है।

अब सहस्रार पर विचार करते हैं :–

यहाँ तक जिन स्थानों का वर्णन किया गया है उनसे भी ऊपर शून्य देश में जो नाडियों की आवृत्ति से ऊपर है अर्थात् सुषुम्ना नाडी से भी ऊपर है किन्तु विसर्ग शक्ति के नीचे सहस्रदलपद्म का निवास है (षट्चक्र निरूपण श्लोक ४०, पृ० ६११ पर पूर्णानन्द गिरी की टीका में)। विसर्ग की स्थिति ब्रह्मरन्ध्र के ऊर्ध्व भाग में है। कहा भी है :–

"तस्मिन् रन्ध्रे विसर्गं च नित्यानन्दं निरञ्जनम्" यहाँ श्लोक में "लकाराद्यैर्वर्णैः प्रविलसित वपुः केवलानन्द रूपम्" कहा गया है। वर्णमाला का यह स्वरूप अ से ल पर्यन्त माना गया है। वस्तुतः सहस्रदल पद्मगत त्रिकोण में अन्दर (जिसकी चर्चा आगे की जावेगी) ह ल क्ष का अवस्थान है। जैसा कि हम ऊपर देख आये हैं आज्ञा चक्र में ह क्ष वर्णों का समावेश है जो त्रिकोण की आधार

रेखा है। अतः ह से प्रारम्भ करने पर ल ऊर्ध्व बिन्दु बनता है। इस प्रकार त्रिकोण का स्वरूप ह ल क्ष होता है। स्वतन्त्र तन्त्र में कहा है :--

"अकथादि त्रिपङ्क्त्या तु ह ल क्ष मध्यमण्डितम् ॥"

एतेन ह ल क्ष वर्णानां त्रिकोणमध्ये स्थितीत्युक्तम्। (वर्णमाला में ल की दो बार स्थिति कही है। प्रथम लकार य र ल व अन्तरस्थ वर्णों के मध्य है, दूसरा लकार हकार के पश्चात् एवं क्षकार से पूर्व है। हं लं क्षं ऐसा रूप है। यह अन्तिम लकार परशिव स्वरूप है। यहाँ शक्ति का पूर्णतः परशिव में लय हो जाता है। क एवं ष का योग है। यहाँ भी शिवशक्ति का योग है किन्तु दोनों के स्वरूप की स्थिति प्रत्यक्षतः क्षकार में प्रतीत होती है। मातृका चक्र विवेक में इसका विशेष वर्णन है)।

पादुका पञ्चक के अनुसार सहस्रार के अन्तर्गत त्रिकोण की स्थिति है जो शक्ति का स्वरूप है। शक्तिरूप यह त्रिकोण नादमय स्वरूप एवं वर्णावयव रूप है। इसको अकथादि त्रिकोण नाम से कहा गया है। वामा, ज्येष्ठा, रौद्री स्त्रीरूप शक्तियों का एवं ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र रूप पुरुष शक्तियों का स्वरूप भी यही त्रिकोण है। अग्नि, चन्द्र, सूर्य मण्डलों का यहाँ अवस्थान है। ह ल क्ष वर्णों से यह मण्डित है। नाद बिन्दुरूपी मणिपीठ पर हंस का सामरस्यमय परमात्मक रूप यहीं है तथा नित्यानन्द निरञ्जन रूप विसर्ग शक्ति का यह स्रोत है। कङ्कालमालिनी तन्त्र में कहा है :--

"तत्कर्णिकायां देवेशि अन्तरात्मा ततो गुरुः।
सूर्यस्य मण्डलञ्चैव चन्द्रमण्डलमेव च ॥
ततो वायुर्महानामा ब्रह्मरन्ध्रं ततः स्मृतम्।
तस्मिन् रन्ध्रे विसर्गञ्च नित्यानन्दं निरञ्जनम् ॥
तदूर्ध्वे शंखिनी देवी सृष्टि स्थित्यन्त कारिणी ॥"

चन्द्रमण्डल के अन्तर्गत विद्युत आकार त्रिकोण का निरन्तर स्फुरण होता रहता है। इस त्रिकोण के अन्तः में शून्य है। त्रिकोण के मध्यवर्ति यह अन्तः शून्य परं विन्दुरूप है। तोडल तन्त्र में कहा है :-

निराकारं परं ज्योतिर्विन्दुरुच्चाव्यय संज्ञकम्।
विन्दुशब्देन शून्यं स्यात् तथा च गुणसूचकम्॥

त्रिकोण के अन्तः में ऊपर जो विसर्ग की स्थिति कही गई है उस अव्यय रूप विसर्ग के दो विन्दुओं के मध्य में शून्य प्रदेश में परमशिव की स्थिति कही है :-

तन्मध्ये तु त्रिकोणं स्याद् विद्युदाकार रूपकम्।
विन्दुद्वयं च तन्मध्ये विसर्गरूपमव्ययम्॥
तन्मध्ये शून्य देशे तु शिवः परम संज्ञकः॥

यह परमशिव ही निजगुरु का स्वरूप है। साधक को ऐसी भावना करनी चाहिए। कहा भी है :-

शिरः पद्मे शुक्ले दशशतदले केसरगते।
पतत्रीणां तल्पे परमशिवरूपं निज गुरुम्॥
तथा- हंस पीठे मन्त्रमये स्वगुरुं शिवरूपिणम्।
अमुकानन्दनाथान्तं स्मरेत्तन्नादपूर्वकम्॥

हंस एवं अन्तरात्मा में अभेद है। इस प्रकार परमशिव रूप निजगुरु कहने का तात्पर्य है कि परमशिव ही गुरु हैं, ऐसी भावना करनी चाहिए। परमगुरु ही परमपूज्य हैं। वाह्य स्थित गुरु चतुष्टय परमगुरु का ही अंश हैं। निर्वाण तन्त्र में भी कहा है :-

शिरः पद्मे महादेवस्तथैव परमो गुरुः।
तत्समो नास्ति देवेशि पूज्यो हि भुवनत्रये।
तदंशं चिन्तयेद्देवि बाह्यो गुरुचतुष्टयम्॥

परमगुरु का ध्यान सहस्रार पद्म में ही सर्वसम्मत है। गुरु-चतुष्टय का ध्यान इससे बाह्य निरूपित है।

सहस्रार की उपर्युक्त कर्णिका में सर्वदेवतामय हंस, परम शिव, परमगुरु आदि का स्थान है, अतः यह शैव, शाक्त, वैष्णव आदि समस्त उपासकों के उपास्य देवता का स्थान कहा गया है। शैव इसको शिव का स्थान, हरिहर उभय के उपासक इसको हरिहर का स्थान कहते हैं। अन्य युगल उपासक अथवा हंस मन्त्रोपासक मुनीन्द्र इसको प्रकृति-पुरुष का स्थान कहते हैं। हंस पद प्रकृति एवं पुरुष उभयरूप है अतः यह स्थान उभयात्मक निरूपित किया जाता है। अपने अपने देवता के नाम से इस स्थान का प्रतिपादन केवल प्रदर्शन मात्र है। वस्तुतः परं विन्दु का अधिष्ठान होने के कारण यह स्थान सर्वदेवतामय है अतः विभिन्न उपासक अपने देवता के नाम से ही इस स्थान को सम्बोधित करते हैं। 'षट्चक्र निरूपणम्' ग्रन्थ में कहा है :-

शिवः स्थानं शैवाः परमपुरुषं वैष्णवगणाः,
लपन्तीति प्रायो हरिहरपदं केचिदपरे।
पदं देव्या देवी चरणयुगलाम्भोजरसिका,
मुनीन्द्रा अप्यन्ये प्रकृति पुरुषस्थानममलम्॥

साधक के लिए सहस्रार का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। इसका साङ्गोपाङ्ग ज्ञान हो जाने पर साधकचित्त जब इसमें नियत हो जाता है तब पुनः उसको संसार में नहीं आना पड़ता। वह मुक्त हो जाता है। तत्त्वज्ञानियों के बन्ध हेतु-भूत पापपुण्यों का उदय नहीं होता, अर्थात् सञ्चित पाप-पुण्यों का क्षय हो जाने से तत्व-ज्ञानियों को कभी भी शरीरधारण नहीं करना होता है। एवं यह प्रारब्ध कर्म के भोगपर्यन्त जीवन्मुक्त अवस्था में विचरते हैं तथा देह त्याग करने पर मुक्त हो जाते हैं। कुलार्णव तन्त्र में कहा है :-

अश्वमेध शतेनापि ब्रह्महत्याशतेन च।
पुण्यपापैर्न लिप्यन्ते येषां ब्रह्महृदिस्थितम् ॥

जिसके हृदय में ब्रह्म समाविष्ट है ऐसा तत्वज्ञानी अनेक अश्वमेध करने पर भी न पुण्य से लिप्त होता है और न सहस्त्रों ब्रह्महत्या के पाप से बद्ध होता है। श्रीमद्भगवत् गीता में भी यही आशय सिद्ध किया है :-

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन्।
न चास्य सर्व कार्येषु कश्चिदर्थव्यपाश्रय: ॥

उस ब्रह्म में मनलीन हो जाने पर, सङ्कल्प-विकल्प का अन्त हो जाने से पुण्य-पाप दग्ध हो जाते हैं। अतः गीता में कहा है :-

ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा।

ज्ञानी के समस्त सञ्चित कर्म नष्ट हो जाते हैं एवं सर्व साधिका शक्ति का उदय हो जाता है। अभीष्ट कार्य करने की शक्ति तथा अनिष्ट के संहार की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। ज्ञानी आकाश-गमन की शक्ति प्राप्त करता है। गद्यपद्यमयी वाणी मधुर हो जाती है। षट्चक्र निरूपण नामक ग्रन्थ के पैंतालीसवें श्लोक में कहा है :-

इदं स्थानं ज्ञात्वा नियत निजचित्तो नरवरो,
न भूयात् संसारे पुनरपि न बद्धस्त्रिभुवने।
समग्रा शक्तिः स्यान्नियममनसस्तस्य कृतिनः,
सदा कर्तुं हर्तुं खगतिरपि वाणी सुविमला ॥

साधनविधि

यहाँ तक के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि साधन का धाम शरीर ही है। इस शरीर में स्थित षट्चक्र सहस्रार नवनाद गुरुमण्डल आदि स्थानों के सहारे साधक कुण्डली तत्त्व का उत्थान कर योग की सिद्धि करते हैं। बाह्य कामराज आदि पीठ तथा

शिवात्मक द्वादश लिङ्ग आदि तीर्थ नामों से ज्ञात स्थानों की अपेक्षा स्वयं के शरीर को ही आलम्बन बनाकर शिवत्व की प्राप्ति के लिए साधना करता है। इसी शरीर में शक्ति तत्त्व का समावेश है, शान्ता, वामा, ज्येष्ठा, रौद्री शक्तियाँ यहीं स्थित हैं। यही अम्बिका इच्छाज्ञान क्रिया तथा परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी नाम से जानी जाती है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि पुरुष रूप में तथा वामा आदि स्त्री रूप में यही शक्तियाँ कही गई हैं। यही सूर्य, चन्द्र एवं अग्नि का स्वरूप है। अतएव योगी अपने शरीर को ही उत्तम मानकर पर–शिवात्मक गुरु की प्राप्ति के हेतु प्राण कुण्डलिनी का अभ्यास करता है। जैसा कि सूर्य गीता में कहा है–

> पीठोत्पन्न करेष्वेषु साधनेष्वष्टकेष्वपि।
> योगिभिस्तु निजं देहं साधनोत्तममीरितम्॥
> आविर्भवन्ति मे सर्वाः शक्तयस्तत्र निश्चितम्॥

अर्थात इस पंचतत्व कोषमय शरीर में ही समस्त शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं अतः यही उत्तम साधन है।

यह जो अम्बिका आदि एवं शान्ता आदि चार शक्तियों की चर्चा की गई है वही क्रम से परस्पर सामरस्य को प्राप्त होकर कामराज, पूर्णगिरी, जालन्धर, ओड्याण पीठ के रूप में परिणत हो जाती हैं। इन चार पीठों को पिण्ड, पद, रूप एवं रूपातीत नाम से भी कहते हैं। यह चारों पीठ क्रमशः आधार, हृदय, भ्रूमध्य एवं ब्रह्मरन्ध्र में लक्षित हैं। कामराजपीठ भूतत्त्व, पूर्णगिरीपीठ वायु-तत्त्व, जालन्धरपीठ अपतत्त्व, त्रिकोणात्मक ओड्याणपीठ त्रिकोणरूप तेज तत्त्वमय हैं। गगन तत्त्व अरूप होने से निरवयव है अतः उसका पीठ रूप में निरूपण नहीं है।

स्वच्छन्द संग्रह में कहा है :–

> पिण्डं कुण्डलिनी शक्तिः, पदं हंसः प्रकीर्तितः।
> रूपं बिन्दुरिति ख्यातं रूपातीतं तु चिन्मयम्॥

मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी शक्ति पिण्ड है, पद नाम से हंस का निरूपण है, रूप बिन्दु नाम से प्रसिद्ध है, तथा रूपातीत चिन्मय शक्ति है।

चारों पीठों में शिव का चार लिङ्गों के रूप में अवस्थान है। लिङ्ग शब्द का अर्थ है "लीनं बाह्येन्द्रियागोचरं चिद्रूपमर्थं गमयन्तीति लिङ्गानि।" अर्थात् जो बाह्य इन्द्रियों से अगोचर चित् रूप अर्थ का ज्ञान कराते हैं उसको लिङ्ग नाम से कहा गया है। कामरूप, पूर्णगिरी, जालन्धर, ओड्याण-चार पीठ क्रमशः अन्तःकरण नामक मन, बुद्धि, अहंकार एवं चित्तात्मक हैं। अन्तःकरण चतुष्टय के मन आदि चार रूपों में स्वयंभू वाण, इतर एवम् पर लिङ्गों का उनकी (मन आदि चारों की) चार वृत्तियों के रूप में अवस्थान है। यह विषय सौभाग्य-सुभगोदय ग्रन्थ में प्रपञ्चित है ऐसा योगिनी हृदय के टीकाकार ने दीपिका नामक टीका में लिखा है। प्रमाण श्लोकों का यहाँ उद्धरण दे रहे हैं।

पुनरेव कामपीठे तदत्रकोणे स्थिते मनोरूपे।
प्रतिफलितं तज्ज्योतिः स्वयंभूलिङ्गं समीहितं सद्भिः॥
दक्षिणकोणेऽहंकृतिरूपे जालन्धरे तु संक्रान्तम्।
परधाम वाण लिङ्गं जातं संक्रान्त्युपाधि भेदवशात्॥
मध्य त्रिकोण कोणे वामे श्री पूर्णपीठमेतस्मिन्।
बुद्धिमये परतेजः प्रतिफलितं त्वितरलिङ्गानां यातम्॥
चित्तमये श्रीपीठे ज्योतिर्विन्दौ यदस्य संक्रान्तम्।
प्रतिफलितं परश्चाम्नः परलिङ्ग तत्प्रकीर्त्यते प्राज्ञैः॥

त्रिकोण के अग्र दक्ष वाम कोणों के मध्य चारों की क्रमशः भावना करनी चाहिये। स्वयंभू लिङ्ग अकारादि सोलह स्वरों से आवृत है। वाणलिङ्ग क से त पर्यन्त वर्णों से एवं इतर लिङ्ग थादिसान्त अक्षरों से आवृत है। परलिङ्ग सूक्ष्म एवं उपर्युक्त लिङ्गत्रय का समष्टिरूप है। समस्त वर्णों से आवृत होने से विन्दु

रूप यह बैन्दव चक्र की वासना से युक्त है। परानन्दकन्द परा मातृकाशक्ति का यह सार है। कहा है–

सूक्ष्मरूपं समस्तवर्णावृतं परलिङ्गकम्।
बिन्दुरूपं परानन्दकन्दं नित्य पदोदितम्॥
---योगिनी हृदय

पर लिङ्ग का स्थान रूपातीत है एवं स्वयंभू, बाण तथा इतर लिङ्ग को समष्टि रूप दर्शाने के लिये एवं कन्द, पद, बिन्दु आदि साधारण आधारों में इसका उदय अर्थात अनुभूति असम्भव है। यह प्रकट करने के लिये योगिनी हृदय के उपर्युक्त श्लोक में "बिन्दुरूपं" "परानन्दकन्दं" 'नित्यपदोदितं' तीन विशेषणों से परलिङ्ग शब्द के विशेषित किया है।

शक्तियां:–

मूल आदि षट् चक्रों में स्थित डाकिनी, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, साकिनी, हाकिनी, याकिनी शक्तियां क्रमशः त्वग्, सृङ, मांस, मेदा, मज्जा एवं शुक्र नामक धातुओं की अधिष्ठातृ देवियाँ हैं। अ, क, च, ट, त, प, य, श वर्गों की अधिष्ठातृ देवी ब्राह्मी आदि योगिनियां हैं। षट् चक्रों में स्थित डाकिनी आदि शक्तियां त्वक् आदि व्यापक रूप होने से प्रकट योगिनी कही जाती हैं। ब्राह्मी आदि देवियों से सेवित त्वक् आदि में स्थित डाकिन्यादि योगिनियों के अन्तर्गत समष्टिरूपा विश्व–विग्रहा ललिता योगिनी विहार करती है। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि गुरुस्वरूप त्रिपुर-सुन्दरी समष्टि रूप में तथा डाकिनी, ब्राह्मी आदि योगिनियां व्यष्टि रूप में एवं व्यष्टि रूप लिङ्गत्रय तथा समष्टिरूप पर शिव का साधक को अपने शरीर में ही अनुसन्धान करना है। अनुसन्धान का साधन भी यहां विचार करना आवश्यक है। हमारे पूज्य गुरु स्वामीजी महाराज ने योग को ही परम तत्त्व के साधन के रूप में

स्वीकार किया है। घेरण्ड संहिता की भूमिका में गुरुवर ने लिखा है– मनुष्य जीवन के अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्ष के निरूपण में सर्वत्र ही योग की प्रधानता है। योग का प्रयोग लौकिक एवं अलौकिक भेद से दो प्रकार का माना गया है। लौकिक कार्यों की सिद्धि भी मन के अवधान के बिना नहीं होती। अलौकिक योग के विषय में कहा है :–

" यदयं परमो धर्म यद् योगेनात्मदर्शनम् ।"

अर्थात योग से आत्मदर्शन करना परम धर्म है। इस विषय को स्पष्ट करने का कार्य घेरण्ड संहिता में विशेष रूप से प्रस्तुत किया है। यह तान्त्रिक साधना का ग्रन्थ है। इसके षष्ठोपदेश में स्थूल सूक्ष्म गुरु ध्यान का जो प्रकार दिया है वह तान्त्रिकों का मत है। पातञ्जल–दर्शन में लय–योग एवम् कुण्डलिनी योग का निरूपण नहीं है। कुण्डलिनी योग तान्त्रिकों की विशेष साधना है। पातञ्जल योग में बहुत स्थानों पर मन्त्र सिद्धि का उल्लेख किया है।

'तस्य वाचकः प्रणवः तज्जपस्तदर्थं भावनम्' से सूत्रकार का मत मन्त्र के विषय में स्पष्ट हो जाता है। घेरण्ड संहिता में आज्ञाचक्र में प्रणव का ध्यान, अजपाजप एवं तत्त्वों के मन्त्रों का उल्लेख किया गया है। गुरु ध्यान में सभी टीकाओं में तथा मूल में द्वादशाक्षर गुरुमन्त्र का ग्रहण किया गया है। इस ग्रन्थ में प्राणायाम की साधना मुख्य है अतः यह संहिता हठयोग के अन्तर्गत है। अन्त में हठयोग भी राजयोग में परिणत हो जाता है। तथापि पातञ्जलि योग–दर्शन से भिन्न है। पातञ्जल मत द्वैतवादी है एवं घेरण्ड संहिता अद्वैतवादी है। जीव की सत्ता ब्रह्म की सत्ता से भिन्न नहीं है। 'सोऽहम्' मन्त्र के अनुसन्धान से जीव ब्रह्म भाव को प्राप्त होता है। यह सिद्धान्त भी तान्त्रिकों का ही है। इसे ही श्री गोरक्षनाथ के 'योगबीज' में एवं महार्थमञ्जरी ग्रन्थों में स्वीकार किया गया है। शैव दर्शन में भी यही अद्वैत सिद्धान्त मान्य है।

गुरु साधना के लिए घेरण्ड संहिता का ध्यान योग एवं समाधि योग का अध्ययन आवश्यक है (पीताम्बरापीठ प्रकाशन)। पाठकों की सुविधा के लिए संहिता में वर्णित स्थूल, तेजोमय एवं सूक्ष्म ध्यान का निरूपण करते हैं :–

स्थूल ध्यान :–

ब्रह्मरन्ध्र में सहस्रार नामक सहस्रदलवाला, महापद्म है, इसके मध्य में बारह दल का एक कमल है। यह शुभ्र वर्ण तथा परम-तेजमय है। इसके बारह दलों में क्रमशः 'ह स क्ष म ल व र यं ह स ख फ्रें' बारह अक्षर हैं। उसकी कर्णिका में अ क थ अक्षरों की तीन रेखाएँ हैं, मध्य में ह ल क्ष त्रिकोणाकार अक्षरों के मण्डल में ॐ है। पुनः नाद बिन्दुमय एक पीठ है जहाँ हंस अक्षरद्वय हैं। वहीं पादुका भी हैं। इसी स्थलपर गुरुदेव विराजित हैं। उनकी दो भुजाएँ हैं, शुक्ल वस्त्र, शुभ्र चन्दन, शुभ्रवर्ण की माला धारण किए हैं। उनके वाम भाग में रक्तवर्णा शक्ति है। ऐसा ध्यान करने से स्थूल ध्यान सिद्ध होता है।

ज्योतिर्मय ध्यान :–

इस ध्यान के करने से योगसिद्धि तथा आत्मप्रत्यक्ष होता है। मूलाधार में सर्पाकार कुण्डलिनी शक्ति है। इस स्थान में दीप कलिकाकार जीव रहता है। यहाँ पर ज्योतिरूप ब्रह्म का ध्यान ज्योतिर्ध्यान कहा जाता है। भ्रूमध्य में और मन के ऊर्ध्व भाग में ॐकारमय और शिखामाला युक्त ज्योति है। उसका ध्यान ज्योतिर्ध्यान है और इसे ही तेजो ध्यान कहा है।

सूक्ष्म ध्यान :–

बड़े भाग्य से साधक की कुण्डलिनी जागृत होती है। आत्मा के साथ मिलकर नेत्ररन्ध्र से निकलकर कुण्डली ऊर्ध्वभागस्थ राजमार्ग

नामक स्थल में घूमती है। इस प्रकार भ्रमण करते समय सूक्ष्मत्व एवं चंचलत्व के कारण उसे देखना कठिन है। योगी शाम्भवी मुद्रा के अभ्यासद्वारा कुण्डलिनी का ध्यान करते है। स्थूल ध्यान से ज्योतिर्ध्यान सौ गुना श्रेष्ठ है तथा ज्योतिर्ध्यान से सूक्ष्मध्यान लाख गुना श्रेष्ठ है। इस प्रकार सूक्ष्म ध्यान से आत्मसाक्षात्कार की सिद्धि होती है।

जैसा कि ऊपर कहा है, गुरुध्यान को सिद्ध करने के लिए तन्त्र शास्त्र में योगमुद्राओं की ही प्रधानता है। मुख्य रूप से हूं एवं हंस मन्त्र शाम्भवी मुद्रा, योनिमुद्रा, खेचरीमुद्रा एवं मूल आदि बन्धत्रय का उपयोग साधकों द्वारा किया जाता है।

(व. मु. रहस्यं पृ० १३०-१३१)

योग :-

'योगतत्त्वोपनिषत्' में चार प्रकार के योग कहे गए हैं। १- मन्त्र-योग, २- लययोग, ३- हठयोग और ४- राजयोग। गोरक्ष पद्धति में संक्षेप में इनके लक्षण दिए हैं। यथा :-

"यो मंत्रमूर्तिवशगः स तु मन्त्र योगः,
यच्चित्त-सन्तत-लयः स लयः प्रदिष्टः।
यस्तु प्रभञ्जन-विधानरतो हठस्सः,
यश्चित्तवृत्तिरहितः स तु राजयोगः॥"

योग के साधन में जहाँ मन्त्र एवं मूर्ति का उपयोग होता है, वह मन्त्रयोग है। जिस साधन से चित्त का सतत लय हो जाता है वह लययोग कहा गया है। जहाँ वायु का निरोध किए जाने का विधान है वह हठयोग है। ह से अभिप्राय है चन्द्रनाडी तथा ठ सूर्यनाडी है। इडा एवं पिङ्गला इन्हीं को कहते हैं। जहाँ उभय नाडियों में प्रवाहित वायु को निरुद्धकर प्राण को सुषुम्ना में प्रविष्ट किया जाता है वह हठयोग है। योग के इन तीनों प्रकारों के

अभ्यास के लिए योनिमुद्रा, अन्तः प्राणायाम नामक बन्धत्रय का उपयोग आवश्यक है। शाम्भवी एवं खेचरीमुद्रा की सिद्धि के हेतु भी बन्धत्रय आवश्यक है। अतः प्रथम योनिमुद्रा एवं बन्धत्रय का निरूपण करते हैं।

योनि मुद्रा

साधक पद्मासन या सिद्धासन से बैठे। गुह्य स्थान पर प्रथम वाम पाद को नियोजित करे, उसके ऊपर दक्षिण पाद की एड़ी (पार्ष्णि) निवेशित करे, काया को सीधा रखे जिस से सिर एवं ग्रीवा भी एक सीध में रहें। इसके पश्चात् मुख की काकचञ्चु के समान मुद्रा बनाकर बाह्य प्राण को जठर में परिपूरित करे। कनिष्ठिका एवं अनामिका से मुख का दृढ बन्धन कर दोनों अंगूठे से कानों के रन्ध्रों को बन्द करे तथा तर्जनी से दोनों नेत्रों को बन्द करे। मध्यमा अङ्गुलियों से नासिका के दोनों रन्ध्रों को बन्द कर वायु को धारण करे, मन्त्र के वर्णों का स्मरण करता हुआ दृढ होकर योग का साधन करे।

जप के अभ्यास में भी यह मुद्रा अवश्य कर्तव्य है। इस मुद्रा के विधान से मन्त्र जप करने पर प्राण एवं मन का ऐक्य सिद्ध हो जाता है। कारण यह कि मन का निरोध प्राण के आधीन है। हृदय से प्रारम्भ होकर नासिका के द्वार पर्यन्त प्राण की गति है। अधोभाग में अपान, नाभि मण्डल में समान, कण्ठ देश में उदान, एवं समस्त शरीर में व्यान नामक वायु आवृत है। वायु जब वाम नासा रन्ध्र में प्रवाहित होती है तब यह शीतांशु चन्द्र, दक्षिण रन्ध्र में प्रवाहित होनेपर सूर्य तथा साम्य अवस्था में अग्नि का स्वरूप है। इडा, पिङ्गला, सुषुम्ना की सीमा पर्यन्त वायु की गति कही गई है। प्राण योग का प्रवर्तन इन तीन नाडियों में होता है। इन तीनों में सुषुम्ना ही प्रधान नाडी है। इस के मध्य में चित्रा नाडी है जिसके अन्तर्गत पञ्चभूतों के अधिदेवताओं का निवास है जो

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव नाम से सम्बोधित हैं। चित्रा के अन्तर्गत ही षटचक्रों का चिन्तन योगी करते हैं। ऊपर षट्चकों के निरूपण में इनका स्वरूप एवं ध्यान दिया गया है।

सिद्धासन में आसीन साधक उपर्युक्त प्रकार से योनि मुद्रा का मुद्रण कर ब्रह्म प्रणव का अनुसन्धान करे तब नाद-ज्योतिर्मय शिव स्वयं प्रकट हो जाता है तथा आत्म तत्त्व का इस प्रकार आविर्भाव होता है जैसे मेघ के हट जाने पर सूर्य निर्मलरूप में प्रकट होता है। इस प्रकार योनिमुद्रा का अभ्यास करने से अन्तर्गत नाद का दक्षिण कर्ण में साधक श्रवण करता है। इस प्रकार अभ्यास से बाह्य ध्वनि से मुक्त साधक तुर्य पद को प्राप्त करता है। अभ्यास प्रारम्भ करते समय कुछ काल तक नाना प्रकार का महान नाद सुनाई देता है। पीछे अभ्यास की वृद्धि होने पर यह नाद सूक्ष्मरूप धारण करता जाता है। प्रारम्भ में जलधि, मेघ, भेरी, निर्झर आदि का शब्द सुनाई देता है। मध्य में घण्टा का शब्द एवं अन्त में किंकिणी, वंशी, वीणा, भ्रमर–नाद का साधक श्रवण करता है। इस प्रकार साधक सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर नाद का परामर्श करता है। प्रथम जिस किसी प्रकार के नाद में मन लग जाता है ततः उसके साथ ही विलीन हो जाता है। अभ्यास से बाह्य नाद का विस्मरण हो जाता तथा सहसा चिदाकाश में मन इस प्रकार विलय हो जाता है जैसे दूध में जल। संयम पूर्वक अभ्यास से मन उदासीन भाव को प्राप्त हो जाता है एवं उन्मनी अवस्था की प्राप्ति हो जाती है। सब चिन्ताओं का परित्याग कर नाद का ही अनुसन्धान करना चाहिये, चित्त का इस में ही विलय हो जाता है। ब्रह्म प्रणव से संलग्न नाद अन्तरङ्ग, विकल्प समुद्र के लिये वेला के समान है। जहां तक शब्द का प्रवर्तन होता है वहीं तक आकाश का संकल्प सम्भव है। परं ब्रह्म निःशब्द है। जहां तक नाद है वहां तक मन है। उसके बाद उन्मनी अवस्था है। शब्दात्मक अक्षर के क्षीण हो जाने पर निःशब्द परम पद का उदय होता है। यहां समस्त वासनाएँ क्षीण

हो जाती हैं। वहां दुंदुभी आदि का अन्तः नाद फिर सुनाई नहीं देता। योगी शीतोष्ण, सुख, दुःख, मान, अपमान से मुक्त हो जाता है तथा स्वस्वरूप में अवस्थित हो जाता है।

नाद योग भी अन्ततो गत्वा राज योग में परिणत हो जाता है जहां विना प्रयत्न किये ही वायु स्थिर हो जाता है, दृष्टि विना सदृश के एवं चित्त विना अवलम्बन के स्थिर हो जाता है। यह आन्तर नाद ही तारक ब्रह्म का रूप है। कहा है :-

दृष्टिः स्थिरा यस्य विना सदृश्यं,
वायुः स्थिरो यत्र विना प्रयत्नम्।
चित्तं स्थिरं यस्य विनावलम्बं,
स ब्रह्म तारान्तरनाद रूप॥

यह नाद योग लय योग के अन्तर्गत है। यहां ॐ के आश्रय से समाधि अवस्था का आविर्भाव कहा गया है। मन्त्र योग का विस्तृत विवरण कुण्डलिनी जागरण के स्वरूप को दर्शाते हुए किया गया है। वहां भी परमगुरु पर शिव में मन लय हो जाता है। वहां 'हंस' 'हूं' 'सोऽहम्' मन्त्रों का प्रयोग है। वास्तव में चित्त लय के यह दोनों ही प्रकार हैं। नाद और विन्दु दोनों ही अपने स्थूल एवं सूक्ष्म रूपों का परित्याग कर परब्रह्मात्मक स्वरूप में चित्त का लय कर देते हैं। जहां साधक खुले नेत्रों से ब्रह्म का दर्शन करता है। जैसा कि कबीर ने कहा है–

"खुले नयन से साहिब देखूं यह गुरु-ज्ञान बताया।"

मूलाधार पद्म की कर्णिका के मध्य योनि स्थान है। उसके अन्तर्गत सकलप्रपञ्च की निमित्तोपादान भूता चिन्मयी कुण्डलिनी शक्ति स्थित रहती है। (यह चिन्मयी शक्ति जगत् का निमित्त कारण भी है तथा उपादान कारण भी है। इस स्वरूप को ही अर्धनारी–नटेश्वर के रूप में चित्रित किया जाता है।) तीन गुणों

से युक्त होने के कारण ही इसको सूर्य, चन्द्र एवं अग्नि का मूल कहा है। अविद्या के कारण यह सर्पाकार शक्ति मूलाधार में निद्रा अवस्था में रहती है। जैसे सर्प जब सोता है तब कुण्डलाकार हो जाता तथा जाग्रत होकर जब चलता है तब दण्डाकार हो जाता है। शक्ति भी निद्रित अवस्था में कुण्डलाकार हो जाती है। कुण्डलिनी ही जीव तत्त्व है। जिसको अज्ञान की अवस्था में निद्रित कहा जाता है। जिस प्रकार अंधकार में रज्जु की, भ्रमवश सर्प के रूप में अनुभूति होती है उसी प्रकार अज्ञानरूपी अंधकार से आवृत होने से चिन्मयी शक्ति को सर्प की उपमा दी गई है। जब प्राणायाम के दृढतर अभ्यास से यह सर्पिणी जाग्रत होती है तब सर्पाकृति का परित्याग कर ऊपर उठती है तथा मूल, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा एवं सहस्रार पद्मों का अतिक्रमण कर परमशिव में विलीन हो जाती है। मन्त्र विज्ञान में यह चिन्मयी शक्ति सर्वोपरि, सब का कारण कहा है अतः इस को नादरूपा कहा गया है, तथा स्थूल रूप में यह वर्णमयी है। सुषुम्ना नाडी मूलाधार से ब्रह्म रन्ध्र पर्यन्त मेरु दण्ड नामक पृष्ठ वंश में ऊर्ध्वाकार स्थित है। जाग्रत होने पर सर्पाकार शक्ति सुषुम्ना मार्ग से परम शिव तक पहुंचती है। मन्त्र का अर्थ तभी स्पष्ट होता है तथा मन्त्र चैतन्य भी तभी होता है।

कुण्डलिनी रूप चिन्मयी शक्ति के जागरण के लिये मूलबन्ध, उड्डीयान बन्ध एवं जालन्धर बन्ध को योगियों ने प्रशस्त मार्ग कहा है :–

महामुद्रा नभोमुद्रा ओड्याणं च जलन्धरम् ।
मूलबन्धं च यो वेत्ति स योगी मुक्तिभाजनम् ॥

साधक सिद्धासन से बैठकर अपनी एड़ी के आघात से योनि स्थान का संपीडन करे तथा योनि मार्ग का दृढ आकुञ्चन कर अपान को ऊपर की ओर आकर्षित करे, इस को मूल बन्ध कहते हैं।

इस प्रकार अभ्यास से अपान एवं प्राण का ऐक्य हो जाता है। प्राणापान के ऐक्य से मूत्र एवं पुरीष का क्षय हो जाता है। वृद्ध भी युवा हो जाता है (योग तत्त्वोपनिषत्)। हूंकार एवं हंस मन्त्र के उच्चारण से भी अपान वायु की ऊर्ध्व गति हो जाती है। बगला मुखी रहस्यं में स्वामी जी ने लिखा है :– "तज्जागरणं हंस मन्त्रेण हूंकारेण वा गुरूपदिष्ट मार्गेण।" षट्चक्र निरूपण में भी कहा है :–

हूंकारेणैव देवीं यमनियम समभ्यासशीलः सुशीलः।
भित्त्वा तल्लिङ्ग रूपं पवनदहनयोराक्रमेणैव गुप्तम्॥

पवन एवं दहन के आक्रमण से 'हूं' कूर्च बीज का उच्चारण करने से कुण्डलिनी का ऊपर उत्थान होता है। तब कुण्डलिनी स्वयं भू लिङ्ग के छिद्र का भेदन कर ब्रह्मद्वार के मध्य में चित्रिणी नाडी के मुख में पहुंच जाती है।–

वस्तुतः बन्धत्रय के साधन में प्राणायाम का क्रम परिवर्तित हो जाता है। यहां प्रथम रेचक का अनुष्ठान होता है। वायु के रेचन से मूल में उदर का पश्चिम (पीठ) की ओर दबाव हो जाता है तथा गुदा का आकुञ्चन स्वयं हो जाता है जिससे अपान ऊपर की ओर आकृष्ट होता है। हूं मन्त्र व हंस के उच्चारण से भी यही प्रक्रिया होती है। अतः मूलबन्ध की सिद्धि के हेतु प्रथम वायु को नासिका से बाहर की ओर वेग पूर्वक निकाले।

इसके पश्चात् पूरक क्रिया द्वारा वक्षस्थल को ऊपर की ओर खींचे। जिस मुद्रा से महा पक्षी अविश्रान्त उड़ता जाता है वह ओड्डीयाण बन्ध है। उड़ते समय पक्षी अपने पंखों को फैला कर वक्ष की जिस प्रकार क्रिया करता है वैसे ही साधक को पूरक प्राणायाम द्वारा वक्षस्थल एवं उदर प्रदेश को ऊपर की ओर आकृष्ट करना होता है यह ओड्डीयान बन्ध है। इस बन्ध को मृत्यु रूपी मातङ्ग के लिये केशरी के समान कहा गया है। कहा है।–

ओड्डयानं कुरुते यस्मादविश्रान्तं महाखगः।
ओड्डियाणं तदेव स्यान्मृत्युमातङ्ग केशरी॥

मूलबन्ध एवं ओड्डियाण में क्रमशः रेचक एवं पूरक करने के बाद जालन्धर बन्ध से कुम्भक का अभ्यास करे। जिससे शिर में उद्भूत नभो जल का बन्धन होता है वह जालंधर बन्ध है। जालन्धर बन्ध करने से कण्ठ का संकोच हो जाता है। जिसके कारण सहस्रार से अधोगामी पीयूष का अग्नि में क्षरण नहीं होता और न ही वायु का प्रवाह नीचे की ओर हो पाता है। कहा है:-

वध्नाति हि शिरोजातमधोगामि नभोजलम्।
ततो जालंधरो बन्धः कष्ट दुःखौघ नाशनः॥
जालन्धरे कृते बन्धे कण्ठ संकोच लक्षणे।
न पीयूषं पतत्यग्नौ न च वायुः प्रधावति॥

इस प्रकार बन्धत्रय के अभ्यास से प्राणायाम की सिद्धि होती है। यह हठयोग के अन्तर्गत है। श्री स्वामी श्री गुरुवरने बगला मुखी रहस्य में कहा है :-

"अष्ट कुम्भकमभ्यस्य मूलबन्धमुड्डीयानं जालंधराख्यं बन्धत्रयं सम्पाद्य प्राणान् नियन्तुं हठाभ्यासिनां प्रशस्तोपायः।"

मन्त्र योग एवं नाद योग के समान ही हठयोग की भी राजयोग में परिणिति हो जाती है। श्रीमद्भगवदीता के छठवें अध्याय की टीका में महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सन्त ज्ञानेश्वर महाराज ने बन्धत्रय की प्रकिया एवं स्वानुभूत योगानन्द का अत्यन्त सजग एवं सजीव वर्णन किया है।

पतञ्जलि के योग दर्शन में भी **'प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य'** सूत्र में नासा पुटों से प्राण वायु के रेचन तथा धारण को मन की दृढ स्थिति के लिये साधन के रूप में प्रतिपादन किया है।

आगे द्वितीय पाद में भी 'धारणासु च योग्यता मनसः' सूत्र के भाष्य में भाष्यकार व्यास ने उपर्युक्त सूत्र का उद्धरण दिया है जिसका अभिप्राय है कि प्राण के रेचन और धारण के अभ्यास से ही मन की योग्यता धारणा के अभ्यास में सिद्ध होती है। इसके पश्चात् प्रकाश का आवरण क्षीण हो जाता है। अर्थात् महामोहमद इन्द्रिय जाल के संसार निबन्धक कर्म से सत्त्व का जो आवरण होता है वह प्राणायाम से क्षीण हो जाता है। कहा है कि प्राणायाम से श्रेष्ठ अन्य कोई तप नहीं है इससे ही आणव आदि मलत्रय की शुद्धि तथा ब्रह्म ज्ञान की दीप्ति होती है।

यह प्राणायाम बाह्य एवं आभ्यन्तर भेद से दो प्रकार का कहा गया है। यहां गुरुपादुका जप के अभ्यास के लिये आभ्यन्तर प्राणायाम का ही विधान है अतएव योनि मुद्रा मन्त्र योग बन्धत्रय का विस्तृत विवरण दिया है। शाम्भवी मुद्रा एवं खेचरी मुद्रा आभ्यन्तर प्राणायाम की सिद्धि का कारण हैं अतः इनका किंचित् विवरण प्रस्तुत है। — (बगलामुखी रहस्यं)

शाम्भवी मुद्रा

अन्तर्लक्ष्यो बहिर्दृष्टिः निमेषोन्मेष वर्जितः।
एषा हि शाम्भवी मुद्रा सर्वतन्त्रेषु गोपिता॥

शाम्भवी मुद्रा सभी सम्प्रदायों में ग्रहण की गई है। वैष्णव इस को वैष्णवी मुद्रा, शाक्त भैरवी मुद्रा, शैव शाम्भवी मुद्रा आदि नामों से इस को स्मरण करते हैं। सभी तन्त्रों में इस को गुप्त रखा गया है। आगम शास्त्र में साधकों की सुविधा के लिये इसको स्पष्ट कर दिया है। साधक अन्तः लक्ष्य को ध्यान में स्थापित कर दृष्टि को निमेष एवं उन्मेष से वर्जित कर बाह्य अर्थात् खुली आखों से लक्ष्य का अवलोकन करे। कोई साधक अर्धनिमीलित चक्षुओं से एक टक दृष्टि कर नासिका के अग्रभाग का अवलोकन करते हैं, अन्य साधक क्रूर दृष्टि से भ्रूमध्य का ध्यान करते हैं। बाह्य दृष्टि से

धारणा अर्थात् चित्त किसी बाह्य देश में स्थिर हो जाता है। निमेष-उन्मेष से वर्जित दृष्टि से निरन्तर देखने से चित्त की स्थिरता सम्पन्न हो जाती है।

लक्ष्य तीन प्रकार के कहे गये हैं। देह के अन्तर्गत सुषुम्ना में प्राण का संचार होने पर कोटि तडित् समान आभा से युक्त प्रकाश होता है यह प्रकाश मूलाधार से ब्रह्म रन्ध्र पर्यन्त योगी अवलोकन करता है। यह अन्तर्लक्ष्य है। दूसरे, तर्जनी के द्वारा कर्णों के छिद्र बन्द कर लेने पर कर्ण रन्ध्रद्वय में फूत्कार शब्द होता है। वहां मन को संलग्न करने पर चक्षुओं के अन्दर नील प्रकाश स्थल का अवलोकन करने से निरतिशय सुख उत्पन्न होता है। इस प्रकार ज्योति प्रकाश एवं शब्द प्रकाश को अन्तर्लक्ष्य कहा गया है। निमेषोन्मेष रहित चक्षुओं से बाह्य प्रदेश में दृष्टि का बन्ध करने से अन्तर्लक्ष्य की अनुभूति होती है। इस प्रकार अन्तर लक्ष्य एवं बाह्य लक्ष्य सिद्ध होने पर शाम्भवी मुद्रा सिद्ध होती है। लक्ष्य के एकाकार होने पर ही पर-शिव गुरु का दर्शन होता है।

खेचरी मुद्रा

श्री गुरुदेव स्वामीजी महाराजने योग विधि निरूपण अध्याय में गुरु दर्शन का महत्त्वपूर्ण उपाय खेचरी मुद्रा कहा है। अङ्गों की शिथिलता का त्याग कर नासिका के अग्रभाग पर नेत्रों को आरोपित करे। मुख को इस प्रकार खोले कि दांतों से दांत का स्पर्श न हो। जिह्वा को व्यावृत कर तालु में स्पर्श करे तथा आधारस्थ योनि मण्डल में मन को धारण करे। यह परमा मुद्रा निरालम्बा अथवा खेचरी मुद्रा के नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रकार धारणा करने से ध्यान के अभ्यास की योग्यता प्राप्त होती है तदनन्तर ध्यान सिद्ध होने पर पतञ्जलि के क्रम के अनुसार समाधि की सिद्धि होती है।

(बगला मुखी रहस्यं)

त्रिकोण का स्वरूप
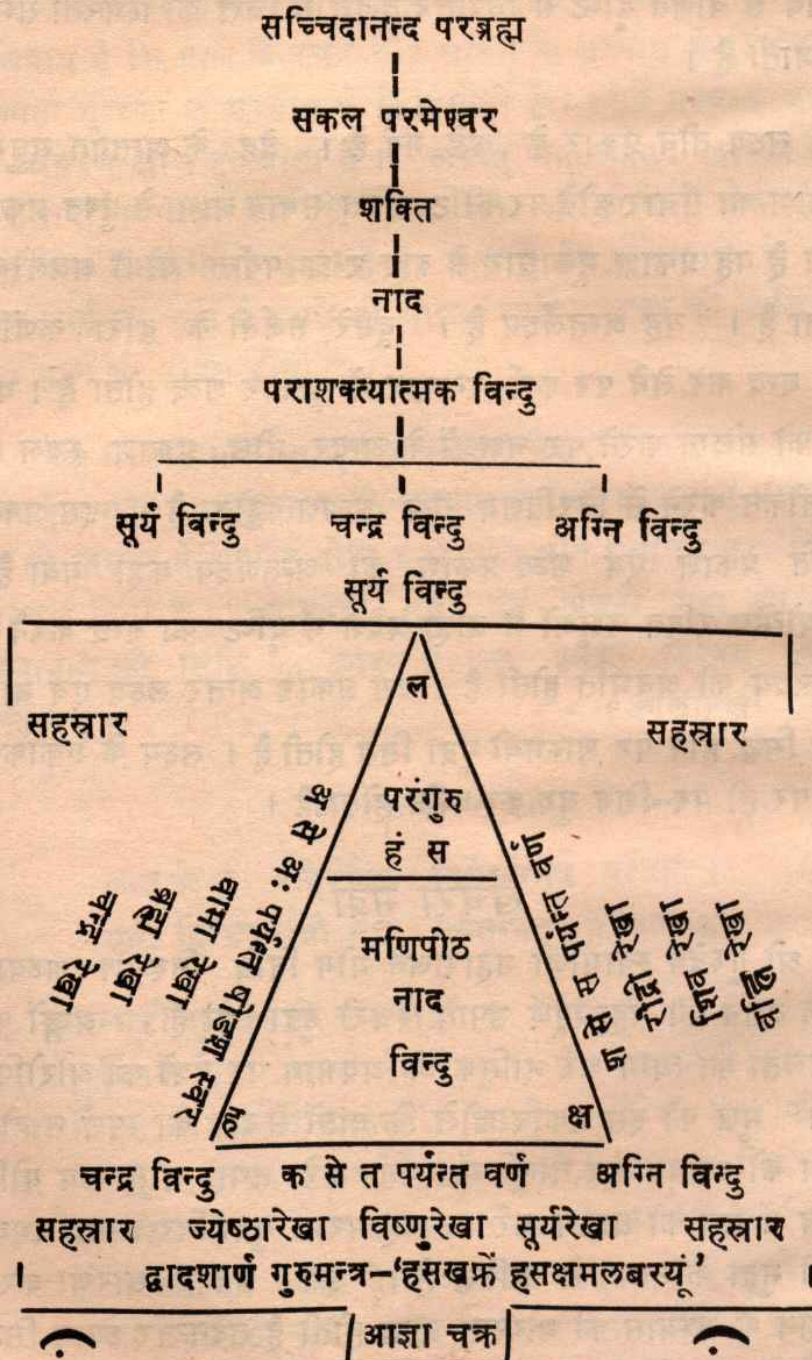
पादुका पञ्चक

१. पद्म २. त्रिकोण ३. नाद विन्दु ४. मणि पीठ ५. हंसः

चरण ध्यान :-

त्रिकोण के विशेष ज्ञान के बिना साधक की ध्यान में सम्यग् स्थिति नहीं हो सकती है अतः यहां त्रिकोण का चित्रण किया गया है। परब्रह्म सच्चिदानन्द से सकल परमेश्वर का आविर्भाव, सकल परमेश्वर से शक्ति, शक्ति से नाद, नाद से बिन्दु का आविर्भाव होता है। कहा है "नाद एव घनीभूतः क्वचिदभ्येति बिन्दुतां।" यहां तक की स्थिति सहस्रार के ऊपर है। इसके नीचे आने पर पराशक्तिमय बिन्दु का पुनः त्रिधा विभाजन हो जाता है जो बिन्दु, बीज एवं नाद नाम से प्रसिद्ध है। वर्णात्मक शक्ति त्रिकोण के यही तीन बिन्दु हैं। पर बिन्दु से ही निरन्तर त्रिकोण का आविर्भाव होता रहता है। त्रिकोण के तीन बिन्दु सूर्य, चन्द्र एवं अग्नि नाम से प्रसिद्ध हैं। सूर्य बिन्दु त्रिकोण मुख (Apex) है, चन्द्र एवं अग्नि बिन्दु अधः स्थित हैं। जैसा कि कहा है :-

"सूर्य बिन्दु मुखं प्रोक्तमधस्तादिन्दुपावकौ ॥"

वामावर्त से त्रिकोण की रचना करने से अ से अः वर्णों की वामा रेखा, क से त पर्यन्त वर्णों की ज्येष्ठा, तथा थ से स पर्यन्त वर्णात्मक रौद्री नामक दक्षिण रेखा है। यही क्रमशः ब्रह्म, विष्णु एवं रुद्र रेखायें हैं। इनका ही नाम चन्द्र, सूर्य, एवं अग्नि रेखा है।

त्रिकोणाकार शक्ति:-

पर ब्रह्म की ईक्षणात्मक वृत्ति का जब उदय होता है तब इछा, ज्ञान, क्रिया नामक शक्ति–त्रय का विकास होता है। इच्छा, ज्ञान, क्रिया ही सूर्य, चन्द्र और अग्नि नामक तीन बिन्दु हैं जिनसे त्रिकोण की रचना होती है। सृष्टि, स्थिति, संहार भी शक्ति से होता है अतः भी यह त्रिकोण के रूप में चित्रित है। अनुत्तर (अ) तथा आनन्द (आ) की जब इच्छा शक्ति की द्योतक इ स्वर से सन्धि होती है तब इस की एकार के रूप में परिणति हो जाती है। 'ए' का आकार त्रिकोणात्मक है अतः भी शक्ति के विकास को त्रिकोणात्मक कहा गया है। लिखा है:--

"अनुत्तरानन्द चितो इच्छाशक्तौ नियोजितेत्।
त्रिकोणमिति तत्प्राहुः विसर्गामोद सुन्दरम्॥"

वह्निगेह, योनि, शृंगार, एकार आदि त्रिकोण के ही पर्यायवाची हैं। पराशक्ति ही अकथादि वर्णों के रूप में; वामा, ज्येष्ठा, रौद्री देवियों के रूप में; ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र पुरुष देवताओं के रूप में; सूर्य, चन्द्र, अग्नि बिन्दुओं के रूप में विकसित होती है।

पांच पादुकाओं पर आधारित हंस पद है। यहां परं गुरु का स्थान है। परं गुरु का सगुण स्वरूप है। यहां ही जीव का शिव से ऐक्य होता है। हं स नामक यही दो पाद हैं। अहं सः का संक्षेप हं स है। यहां ऐक्य होते हुए भी कुछ वासना शेष रह जाती है। अतः यहां हंस पद को वर्णात्मक त्रिकोण के अन्तः में दिखलाया गया है। हं बिन्दु अथवा पुरुष पद का बाचक है, स प्रकृति है। हंस पद पुंप्रकृत्यात्मक है। यहीं से जगत् की उत्पत्ति कही गई है। कहा है :-

"हंकारो बिन्दुरित्युक्तो विसर्गः स इति स्मृतः।
बिन्दुः पुरुष इत्युक्तो विसर्ग प्रकृतिः स्मृतः।
पुं प्रकृत्यात्मको हंसस्तदात्मकमिदं जगत्॥"

यहीं अमृत का सरोवर है। कुण्डलिनी का जब ऊर्ध्व उत्थान होता है तब उसका प्रकाशात्मक स्वरूप होता है। साधक उसकी तडिताकार में अनुभूति करता है, हंस पद पर पहुंच कर परं शिव से एकाकार होता है। यह ऐक्य ही अमृतात्मक सरोवर है। यहां अज्ञान से उत्पन्न मोहान्धकार दूर हो जाता तथा शिव से अभेदात्मक स्वात्मज्ञान उत्पन्न होता है।

पादुका पञ्चक में जिन पांच पादुकाओं की चर्चा की गई है उनके ध्यान से अघ (पापों) का कोलाहल शान्त हो जाता है। पादुकाओं के ऊपर गुरु चरणों का चिन्तन करने से पापों का नाश

हो जाता है। वस्तुतः पादुकाएँ ध्यानरूप व्यापार का साधन हैं। यहाँ से गुरु चरणों में ध्यान की स्थिति उत्पन्न होती है। गुरु चरणों के प्रकाश की उपमा अमृत सरोवर में उत्पन्न अरविन्द के प्रकाश से दी गई है। पादुका पंचक के टीकाकार ने इसका अर्थ किया है कि श्रीनाथ गुरु के चरणों से निरन्तर परमामृत का प्रवाह होता रहता है। यहां अमृत सरोवर में स्नान कर जब कुण्डलिनी का प्रत्यावर्तन होता है तब सभी चक्रों को चरणामृत रस से आप्लावित कर देती है। चरणों से अमृत की धारा निरन्तर प्रवाहित रहती है। इस का अर्थ है कि अमृत से आप्लावित कुण्डलिनी से सर्वत्र सब कालों में आत्म ज्ञान की सतत दृष्टि उत्पन्न हो जाती है। यही अवस्था सकल सुख समूह की लहरी कही गई है। यहां कुण्डलिनी अमृत रूप हो जाती है। कहा है :--

"प्रकाशमाना प्रथम प्रयाणे, प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमाना।"

जब यहां से (परम हंस पद से) कुण्डलिनी का प्रत्यावर्तन होता है तब वह अभेद–ज्ञान रूपी अमृत से स्वयं आप्लावित होने के कारण समस्त चक्रों को अमृत से प्लावित कर देती है। अर्थात् साधक व्युत्थान दशा में भी 'अहं ब्रह्मास्मि' 'अहं सः' 'सोऽहं' ऐक्यात्मक ज्ञान की अनुभूति करता है।

पर शिवात्मक गुरु

परा–पादुका:–

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि हंस नाम से प्रयुक्त पुरुष-प्रकृति अथवा शिव-शक्ति संश्लिष्ट रूप में परं गुरु निरूपित किये गये हैं। अर्धनारी नटेश्वर के इस स्वरूप में शिव-शक्ति का एक शरीर होते हुए भी दोनों का पृथक् रूप भी दृष्टिगत होता है। अतः यह सगुण है जो सहस्रार में स्थित त्रिकोण के अन्तर्गत है। इस से ऊपर अर्थात पद्म और त्रिकोण से ऊपर प्रकाश-विमर्श नाम से प्रसिद्ध शिव-शक्ति का सामरस्यात्मक रूप है। जिसको परा नाम से कहा गया है।

चित्-विलास में शिव-शक्ति के सामरस्यात्मक परा स्वरूप को ही परशिव की पादुका निरूपित किया है। पादुका पञ्चक में प्रतिपादित साधना के पश्चात् चिद्विलास का क्षेत्र प्रारम्भ होता है। प्रकाश-विमर्शात्मक शिव-शक्तिमय परा तत्त्व से सूर्य, चन्द्र एवं अग्नि बिन्दुओं का आविर्भाव होता है जिससे समस्त जगत् का उद्भव सम्भव है। परा के प्रकाशांश से वामा, ज्येष्ठा, रौद्री शक्तियों का आविर्भाव तथा विमर्शांश से इच्छा, ज्ञान, क्रिया एवं पुरुष रूप ब्रह्म, विष्णु, रुद्र शक्तियों का आविर्भाव होता है। शक्ति के उपर्युक्त त्रिकोण का यही स्वरूप है। चित् विलास नामक ग्रन्थ की विवृत टीका में श्रीस्वामी जी महाराज ने इसके प्रमाण के रूप में गीता का श्लोक कहा है।-

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥

सूर्य, चन्द्र, अग्नि नामक त्रिक समस्त वस्तुओं में व्याप्त है। त्रिक समुदाय से ही पदार्थों का पृथक् पृथक् विमर्शन होता है। इन सबकी समष्टि ही परा का स्वरूप है। अतएव मन द्वारा आवृत्ति रूप से समष्टि आत्मक परा की अनुभूति करना ही गुरु-पादुका का जप है।

गुरु तत्त्व, शिव तत्त्व, पराशक्ति तत्त्व एवं आत्म तत्त्व का अभेद है। अतएव श्रीविद्या साधना का लक्ष्य अद्वैत अवस्था की प्राप्ति ही है। आणव, मायीय एवं कार्मण्य मलों से ही पञ्च क्लेशों की उत्पत्ति होती है। उनसे ही सांसारिक अवस्था में जीवात्मा को निरन्तर क्लेश उत्पन्न होता है। जीवात्मा अविद्यावस्था में स्वयं की सत्ता को शिव तत्त्व से पृथक् अनुभव कर अपूर्ण मानता है। अपूर्ण मान्यता ही व्याधि है तथा समस्त क्लेशों का मूल है इस से निवृत्ति के लिये अद्वैत भावना साधक को करनी चाहिये। अद्वैत के साक्षात्कार होने पर समस्त क्लेशों से निवृत्ति हो जाती है तथा परमानन्द की प्राप्ति होती है। इसी लिये अद्वैत का तीर्थ रूप में निरूपण

किया गया है (चिद्विलास श्लोक ३)। श्रुति कहती है कि यह दृश्यमान नामरूपात्मक सर्व जगत् ब्रह्म ही है। ब्रह्म ही अद्वैत तत्त्व है। वही सुधारस अमृत समुद्र है। यह अद्वैत नामक सुधा समुद्र स्वात्म विमर्श शक्ति से ही मर्यादित है अतः इसको तीर्थ रूप में प्रतिपादित किया है। जिसके कारण जन समुदाय पापों से तर जाता है उसका नाम तीर्थ है। ब्रह्माद्वैत के साक्षात्कार से सब क्लेशों से निवृत्ति हो जाती है अतएव तीर्थ रूप अद्वैत में श्री विद्या के उपासकों को विधिपूर्वक एकान्तिक निमज्जन करना है। यही स्नान है। इससे मलत्रय से मोचन हो जाता है। श्रुति भी कहती है :-

"तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥"

जो अद्वैत के दर्शन करता है उसकी शोक एवं मोह से निवृत्ति हो जाती है।

वह विमर्शरूपिणी सकल लोक मोहिनी माया शक्ति ही निशा है। जैसे रात्रि के अन्धकार में रज्जु के स्थान पर सर्प की भ्रान्ति होती है उसी प्रकार माया रूपी रात्रि में जब शिव जीव रूप में परिमित हो जाता है तब मातृका शक्ति का वामा, ज्येष्ठा, रौद्री रूप से अ क थ त्रिकोणं का विकास होता है। वर्णात्मक मातृकाओं से उद्भूत ज्ञान के द्वारा ही माया शक्ति सकल जीवों का राग द्वेषमय विषयों में प्रवर्तन करती है (जैसाकि 'ज्ञानंबन्धः' एवं 'ज्ञानाधिष्ठानं मातृका' सूत्रों से विदित होता है। शिव सूत्र २ व ४)। अतः शिव के अनन्तत्त्व को परिमित करने वाली मायाशक्ति को निशा के रूप में प्रतिपादित किया है तथा शिव को वासर कहा है। जैसे दिन समस्त पदार्थों का अवबोधक है उसी प्रकार शिव प्रकाश रूप होने से समस्त जगत् का प्रकाशक होने से वासर कहा गया है। जहां निशा एवं वासर की सन्धि होती है वही दोनों का सामरस्य रूप है। उसी प्रकार प्रकाश-विमर्श की सन्धि भी उनकी सामरस्य अवस्था है। इस लिये सामरस्य रूप परा सन्ध्य देवता है। तात्पर्य यह कि शिव-शक्ति की अधिष्ठान रूप सन्ध्य देवता ही परा शक्ति है।

यहां स्वप्रकाशरूप शिव को ही भास्कर कहा है जिसका पूजन करना साधक का ध्येय है। (सूर्य का यहां स्थूल प्रकाशमय रूप अभिप्रेत नहीं है।) खेचरी, दृक्चरी, भूचरी आदि सद्विमर्श इस की रश्मियां हैं जिन को वेदी बनाकर अहन्ता बुद्धि से शिव का पूजन करता है। साधक को इस पूजन के लिये किसी बाह्य वेदी अथवा पूजन सामग्री की अपेक्षा नहीं है। अहं में अकार से हकार पर्यन्त सम्पूर्ण वर्णमाला का ग्रहण है। प्रथम अक्षर अकार प्रकाशात्मक परं शिव है, हकार विमर्शात्मक शक्ति है। दोनों का ऐक्य अद्वैत रूप अहं है। त्वक्, पल और अस्थिमय देह में ज्ञानात्मक आत्म तत्त्व को याग मण्डप मान कर पूजन करना ही अर्चन है। यहां हृदय कर्णिका ही वेदी है जहां चिन्मय देवता का निवास है जो इस यजन को करता है उस के पाशों को भैरव काट देता है। श्रुति कहती है "ज्ञात्वा देवं **मुच्यते सर्व पापैः**"। शास्त्र में आठ प्रकार के पाश कहे गये हैं। कहा है :–

"घृणा लज्जा भयं शोकं जुगुप्सा चेति पञ्चमी।
कुलं शीलं तथा जातिरष्टौ पाशा इमे स्मृताः"॥

शिव सूत्रों के अनुसार उद्यम को ही भैरव कहा गया है। उद्यम अन्तः परिस्पन्द है जिसमें प्राण वायु मूलाधार से ऊपर उठकर ब्रह्म रन्ध्र तक जाती है। यही भैरव का स्वरूप है। इस में ही द्वैतात्मक विकल्प रूप विघ्नों की शान्ति हो जाती है एवं पूर्णाहंता की सिद्धि होती है। कहा है :--

"उद्यमोऽन्तः परिस्पन्दः पूर्णाहंभावनात्मकः।"

यहीं निर्विकल्पात्मक निज धाम में विश्रान्ति हो जाती है। यहां निर्विषय ज्ञान के रूप में स्वात्म शम्भु का अहर्निश अधिष्ठान है। शिव से पृथ्वी पर्यन्त छत्तीसों तत्त्वों पर शम्भु का आसन है। पीछे जिस अहं तत्व की चर्चा की गई है वह प्रत्याहार न्यास से समस्त तत्त्वों का बाचक भी है। पञ्च भूतों का बाचक क वर्ग,

पञ्च तन्मात्राओं का चवर्ग, कर्मेन्द्रियों का टवर्ग, ज्ञानेन्द्रियों का तवर्ग, मन, बुद्धि, अहंकार, प्रकृति, पुरुष का बाचक पवर्ग, कला से माया पर्यन्त तत्त्वों का यवर्ग, शुद्ध विद्या से शक्ति पर्यन्त तत्त्वों का बाचक श से क्ष पर्यन्त वर्ण हैं। सोलह स्वरों का अकार में समावेश है। अतः अकार शिव का एवं अन्त्य अक्षर हकार शक्ति का वाचक है। समस्त तत्त्वों का शिव–शक्ति पदार्थ से ही आविर्भाव होता है तथा वहीं लय होता है अतएव अन्त में "अहम्" ही अवशिष्ट रह जाता है (चि. वि. विवृति श्लोक ९)। समस्त तत्त्वों का विलय हो जाने पर ही शिव–शक्ति के सामरस्यात्मक परा स्वरूप ही शेष रहता है जिसका चिन्तन अद्वैतरूप अहम् द्वारा होता है।

वेद्य एवं वेदक दोनों रूपों में परा शक्ति का उदय होता है। जब वेद्य संवित् में मन तत्त्व का स्फुरण होता है तब इदं रूप जगत् अनेक आकारों में स्फुटित होता है। इससे ही क्लेशों की उत्पत्ति होती है। जब परा का वेतृसंवित् के रूप में स्फुरण होता है तब समस्त द्वैत की निवर्तिका होने से अद्वय–विमर्श–विग्रहात्मक वृत्ति के रूप में इसका उदय होता है। इस में मूलाधार से द्वादशान्त पर्यन्त प्राण की संयति के रूप में इस का आविर्भाव होता है। योगियों में यह उत्तरावृत्ति के नाम से प्रसिद्ध है। इस वृत्ति में पूर्ण अद्वैत की अनुभूति होती है। स्थूल रूप षट्चक्रों तथा अन्तरङ्ग बिन्दु, अर्धचन्द्र आदि नव आसनों से भी स्थिर अद्वैत तत्त्व की प्राप्ति होती है। यहां साधक को बाह्य न्यास की क्रिया नहीं करनी होती है। वैखरी-मध्यमा-पश्यन्ती का परा शक्ति में विलय ही न्यास है तथा अवर्ग आदि अष्ट चक्रों की द्योतक वशिनी, कामेश्वरी, मोदिनी, विमला, अरुणा, जयिनी, सर्वेश्वरी एवं कौलिनी शक्तियों का चित्पद में (चित्संवित् तत्त्व में) लय कर देना ही सर्व श्रेष्ठ न्यास का विधान है। इस विधान में शक्ति का आवाहन और विसर्जन भी अन्तरङ्ग है। साधक जब अपनी आन्तरिक संवित् को इन्द्रियों के मार्ग से बाह्य

मेय संवित् में समर्पण करता है तो उस अन्तरङ्ग एवं बाह्य संवित् के समरसीकरण को आवाहन कहा जाता है।

जब गुरु परशिव से ऐक्य भावना प्रदान करता है, तब सकल पापों के समूह का क्षय हो जाता है। "**दीयते परशिवैक्यभावना क्षीयते सकल पाप सञ्चयः**"।। गुरु–कटाक्ष के जिस वीक्षण से शिष्य चित्–जलधि को सेतु के समान पार कर लेता है उस वीक्षण का नाम दीक्षा है।

पञ्च ज्ञानेन्द्रियां और छठवां मन ही अपने–अपने विषयों का प्रदर्शन कराने से षट् दर्शन कहे जाते हैं। इन षट् दर्शनों का जब चित् संवित् तत्त्व में लय हो जाता है तो उसको ही परा शक्ति का पूजन कहा गया है।

जीवात्मा और परमात्मा की जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुर्य चारों अवस्थाओं का तुर्यातीत नामक पांचवीं चिद् घन अवस्था में लय हो जाना ही गुरु देवता का अर्चन है।

जहां समस्त आगमों में उपदिष्ट क्रियाओं का चिद् गगन में लय हो जाता है, शिवत्व प्रापिणी उस क्रिया का नाम खेचरी है। यह साधक के समस्त खेदों की हारिणी कही गई है।

जिस चित् स्वरूप के पारमार्थिक बोध से शक्ति तत्त्व का यह त्रिकोणात्मक वर्णमय स्वरूप इस प्रकार विलय हो जाता है जैसे अधिष्ठानभूत रज्जु का वास्तविक ज्ञान हो जाने पर सर्प की भ्रान्ति का विलय हो जाता है,उस चिदात्मक विलय को ही शक्ति देवता का विसर्जन कहा गया है। साधक को देवता को विसर्जन के लिये किसी अन्य क्रिया की आवश्यकता नहीं है। यह विलयात्मिका क्रिया परा, अपरा, एवं परापरा नाम से तीन प्रकार की जानी जाती है परन्तु वस्तुतः एक ही क्रिया की यह तीन सीढ़ियां हैं। भेद की समाप्ति एवं अभेदात्मक लय की भावना से ही पर शिव में ऐक्य

की भावना उत्पन्न होती है यही साधक के लिये परम साध्य है। अद्वैत की उपलब्धि होने पर परं शिव का पर शिव में लयात्मक ऐक्य हो जाता है।

अजपा

पर-शिवात्मक गुरु से ऐक्य की सिद्धि के हेतु अजपा श्रेष्ठतम उपाय है। विज्ञान-भैरव नामक शिवोपनिषद् में अजपा के स्वरूप का संक्षेप से तीन श्लोकों में उपसंहार किया गया है। अजपा के अभ्यास से साधक निर्विकल्प अवस्था को प्राप्त करता है:–

"ब्रजेत्प्राणो विशेज्जीव इच्छया कुटिलाकृतिः।
दीर्घात्मा सा महादेवी पर क्षेत्रं परापरा॥
अस्यामनुचरन् तिष्ठन् महानन्दमयेऽध्वरे।
तया देव्या समाविष्टः परं भैरवमाप्नुयात्॥
षट्शतानि दिवा रात्रौ सहस्राण्येकविंशतिः।
जपो देव्याः समुद्दिष्टः प्राणस्यान्ते सुदुर्लभः"॥

शिवात्मक 'सः' रूप प्रकाश जब बाह्य प्रदेश में निःसरण करता है तो उसको प्राण कहते हैं, अहमाकार जीव क्षपा रूप है। प्राण के बहिः निःसरण एवं अपान के अन्तः प्रवेश से जीवात्मा का प्रादुर्भाव होता है। जीव प्राण का अन्तर्वर्ती है अर्थात् जीव का प्रवर्तन प्राण के अन्तः में होता है। प्राण का आकार हकार के समान कुटिल है। अतएव जीव की आकृति भी, प्राण के अन्तर्वर्ती होने से कुटिल हो जाती है। प्राण का यदि प्रत्यावर्तन न हो तो जीव का प्रादुर्भाव सम्भव नहीं है। अतः अपान दशा को ही जीव का प्रादुर्भाव कहा गया है। प्राण के बहिः आवर्तन एवं अन्तः प्रत्यावर्तन क्रम में प्राण की आकृति 'ह' के समान कुटिल हो जाती है। हकार कुण्डलिनी का रूप है। अतः प्राण का आधेय भूत जीव अन्तर्वर्ती होने से अपने आधारभूत प्राण के कुण्डलाकार रूप में परिणत हो

जाता है। आवर्तन एवं प्रत्यावर्तन क्रम से उद्भूत प्राण की इस वक्रता का कारण परमेश्वर की इच्छा ही है। प्राण के कुटिल आकार के कारण जीव की परिणति कुण्डल के आकार में हो जाती है इस कारण इसकी सार्ध त्रिवलयाकार सर्पिणी से भी उपमा दी जाती है। जब जीव कुण्डलाकार हो जाता है तब इसके अन्तः वर्ति प्राण भी कुण्डलाकार कहा जाता है। किन्तु प्राण का अन्तर्वर्ति आकाश बाल के अग्रभाग के शतमांश के अन्तिम भाग से भी अधिक अणु रूप है अतः यह परम सूक्ष्म एवं निराकार है। अतः इसकी किसी आकृति विशेष का स्वतन्त्र रूप में निरूपण नहीं हो सकता, आधार की वक्रता के कारण आधेय की वक्रता का निश्चय किया गया है। अतः जैसा कि ऊपर कहा है वस्तुतः आधार रूप प्राण ही कुटिल है न कि तत्त्वतः आधेय भूत जीव।

हृदयाकाश में संवित् मात्र से जीव की उत्पत्ति होती है। प्रथम संवित् का प्राण रूप में आविर्भाव होता है। तत्पश्चात् पूर्णाहं भाव की विमर्श रूप संवित् (ज्ञान) से न्यून देह के अभिमानी जीवत्व की उद्भूति होती है। जैसे महाकाश से घट आदि आकाशों की उद्भूति होती है। इडा नामक वाम तथा पिङ्गला नामक दक्षिण नाडी द्वय में वलन (प्रवाह) होने से प्राण शक्ति को द्विवलयाकार कहा जाता है। सुषुम्ना नामक मध्य नाडी अर्ध मात्रात्मक होने से सार्धा कही जाती है। हृदाकाश से प्राण के आरोहक्रम में प्राणात्मक 'हम्', एवं द्वादशान्त से अवरोह क्रम में अपान दशा से 'स' वर्णों की उत्पत्ति होती है। तात्पर्य यह कि 'हंस' वर्णद्वय के व्यक्त भाषण में ही जीव का जीवत्व है। इस लिये कहा जाता है कि हंस मन्त्र को जीव सर्वदा जपता है। किन्तु हंस मन्त्र जीव ही जपता है परमेश्वर नहीं। हंस मन्त्र स्थूल वर्णात्मक अभिव्यक्ति है अतः इस के जप से जीव की अभिव्यक्ति होती है। ईश्वर दशा में पूर्णाहं भावना की अनुभूति होने से 'अहं सः' 'सोऽहम्' महावाक्यों द्वारा निर्दिष्ट अद्वैततत्व का बोध होता है एवं चिदर्क की रश्मियों का

विकास होने से प्राण–अपान, 'स-ह' रूप धर्म-अधर्म, दीर्घ-ह्रस्व, दिन–रात्रि, आदि द्वन्द्वात्मक सृष्टि की मूल भूत परा देवी का ही निर्देश किया गया है ।

प्राणापान से उद्भूत 'हकार' 'सकार' का जब स्फुट वाच्य रूप में आविर्भाव होता है तब परा देवी की इनके अन्तः गर्भ में विश्रान्ति होती है । अर्थात् हकार–सकार का स्फुट रूप में बाह्य उच्चारण होते समय बिन्दु रूप पराशक्ति अन्तः प्रवेश दशा में अनुस्वार के रूप में 'ह' के मस्तक पर 'हं' रूप बनता है । किन्तु इस अनुस्वाररूपा देवी का केवल बिन्दुतया उच्चारण सम्भव नहीं हैं अतः इस को अजप्य कहा गया है । इसी प्रकार 'सः' के पार्श्व में स्थित विसर्ग (:) रूप देवी भी 'अ' के आश्रय के बिना अनुच्चार्य है । अतः यह अजपा है । इस प्रकार परा देवी को वर्ण क्रम से अजपा कहा गया है । परा देवी का रूप मूलतः संविदात्मक है । संवित् के प्रकाश से ही समस्त शब्द राशि का स्फुरण होता है । संवित् स्वयं प्रकाश रूप है । इस को प्रकाशित करने के लिये किसी अन्य प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती । इस प्रकार वर्ण क्रम एवं संवित् क्रम दोनों ही रूपों से परा को अजपा कहा गया है ।

यहां प्रश्न उठता है कि यदि परा उभय रूपों में अजप्य है तब हंस मन्त्र के जपने से जीव को पूर्णाहं विमर्श की अनुभूति किस प्रकार होती है । महेश्वरानन्द पाद ने लिखा है :–

"यदि निज हृदयोल्लास निर्णेतुं नित्य निष्कलमिच्छा ।
मध्यतुटिः तुटितव्या अस्तङ्गतयोः सोमसूर्ययोस्तर्हि" ॥

अर्थात् सकल वेद्य वर्ग का पोषक हकार है जो सोमात्मक अपान कहा जाता है, ज्ञातृत्व के कारण सकार सूर्य है । हं कार एवं सः कार के अस्त हो जाने पर अर्थात् सूर्य-चन्द्र नाडियों का विच्छेद हो जाने पर मध्य तुटि का उद्धार करने से पूर्णाहं विमर्श का उदय होता है ।

मध्य तुटि :--

स्व हृदय में 'सकार' रूप सूर्य के अस्त हो जाने पर एवं विसर्जनीय हकार की (चन्द्र की) स्व हृदय के संपुटीकरण से लक्षित अनुस्वार में जब विश्रान्ति हो जाती है तब मध्य तुटि का आविर्भाव होता है। सोम एवं सूर्य के विभाजन का अवस्थान जिस क्षण में होता है, काल के उस खण्ड को तुटि नाम से कहा जाता है। अर्थात् सूर्य के अस्त होने के पश्चात् एवं चन्द्र के उदय होने से पूर्व जो मध्य काल का अवकाश है वही तुटि है। यही निर्विकल्प अवस्था है। यहीं 'अहं स' महावाक्य की अनुभूति होती है। 'अहं सः' हंस मन्त्र से संश्लिष्ट है। सोऽहम् महामन्त्र है। स्वात्म प्रत्यभिज्ञा के उपाय के रूप में 'सोऽहम्' महामन्त्र का आमर्शन साधक को करना चाहिये। गुरुवर श्री स्वामी जी महाराज ने ईशावास्य की टीका में इसी को प्राणापान समायोग कहा है। लिखा है :-

प्राणापान समायोगात् शब्दतत्त्व समाश्रयात्।
विज्ञानतत्त्व सापेक्षात् ब्रह्माद्वैतं प्रकाशते॥

प्राणापान के समायोग, शब्द तत्त्व के समाश्रय एवं विज्ञान तत्त्व की अपेक्षा से ही ब्रह्म का अद्वैत स्वरूप प्रकाशित होता है। सोम-सूर्यात्मक प्राणापान के विच्छेद को ही समायोग कहा गया है। यही मध्य तुटि है। यहीं रूपातीत अवाङ्मनस, अगोचर शब्द की अनुभूति होती है। यहां शब्द से तात्पर्य स्थूलध्वनि नहीं अपितु अघोष, अव्यञ्जन, अस्वर, अद्वैत शब्दतत्त्व है जिसका उच्चारण कण्ठ, तालु, ओष्ठ आदि स्थानों से सम्भव नहीं और न ही इसका अभिव्यञ्जन रेखाओं से ही सम्भव है। यह शब्द तत्त्व परं और ऊष्म प्रयत्नों से वर्जित है। यह अक्षर तत्त्व है जिसका कभी क्षरण नहीं होता। वस्तुतः यह अनुच्चार्य विन्दु एवं विसर्ग का ही स्वरूप है जिसका ऊपर वर्णन किया गया। परा वाक् तत्व भी यही है। इसी को पराशक्ति एवं पर-शिव का सामरस्य कहा है। सामरस्य का आस्वादन ही साधक का लक्ष्य है। यही विज्ञान तत्त्व है जिसकी अनुभूति निरन्तर योगी को होती रहती है। ॥ इति शुभम् ॥

पादुका पञ्चकम्

(पञ्चवक्त्र शिवोक्तम्)

ब्रह्मरन्ध्र सरसीरुहोदरे नित्यलग्नमवदातमद्भुतम् ।
कुण्डलीविवरकाण्डमण्डितं द्वादशार्णसरसीरुहं भजे ॥ १ ॥

अमला टीका

पञ्चवक्त्रकृत पञ्चपादुकास्तोत्रमहं समुदायनाशकम् ।
तस्य रोचिरमलाख्यटीकया कोऽपि कालीचरणः प्रकाशयेत् ॥

अथ त्रिलोकोद्धारकर्ता सदाशिवः स्तोत्ररूपेण श्रीगुरुध्यानयोगं कथयिष्यन् तदर्थं प्रथमतो गुरोरधिवासस्थानं निरूपयति ब्रह्मरन्ध्रेति । अस्यार्थः ब्रह्मरन्ध्रसरसीरुहस्य ब्रह्मरन्ध्रविशिष्टं यत् सरसीरुहं सहस्रदलकमलं तस्योदरे तन्मध्ये तत् कर्णिकायामिति यावत् । द्वादशार्णसरसीरुहं द्वादशवर्णविशिष्टं पद्मं भजे सेवे इत्यर्थः । अत्र भजे इति क्रियया अस्मत्कर्तृत्वोपस्थितेः शिववाक्यात् शिवेन स्वीयभजनीयत्वं दर्शयता सर्वेषां शिवोक्तमन्त्रोपासकानां भजनीयत्वं सूचितम् । एवं सर्वत्र वोध्यम् ।

ब्रह्मरन्ध्रस्थानमाह कङ्कालमालिनीतन्त्रे सहस्रदलपद्ममुपक्रम्य—

तत्कर्णिकायां देवेशि अन्तरात्मा ततो गुरुः ।
सूर्यस्यमण्डलं तत्र चन्द्रमण्डलमेव च ।
ततो वायुर्महानामा ब्रह्मरन्ध्रं ततः स्मृतम् ॥ इति ॥

केचित्तु तादृशपद्मोदरे तत्कर्णिकास्थत्रिकोणोदरे इति वदन्ति । तन्न । अत्रोदरशब्दस्य मध्यवाचकत्वात् पद्ममध्यं कर्णिकैव प्रतीयते

न तु कर्णिकामध्य त्रिकोणमध्यम् अनुपस्थितेः। व्यक्तमाह श्यामास· पर्याधृत वचनम्-

शिरः पद्मे सहस्रारे शुक्लवर्णे त्वधोमुखे।
तरुणारुणकिञ्जल्के सर्ववर्णविभूषिते।
कर्णिकान्तःपुटे तत्र द्वादशार्णं सरोरुहे॥ इत्यादि॥

अत्र कर्णिकान्तः पुटे इति सुव्यक्तम्। द्वादशार्णेति द्वादशवर्णाः सहखफ्रें हसक्ष मलवरयूं म् इति गुरुमन्त्रात्मक द्वादशवर्णाः तद्विशिष्ट-पद्ममिति तन्त्रज्ञाः। केचित्तु द्वादशवर्णो वाग्भवबीजं तद्युक्त-पद्मिति वदन्ति। तन्न। तथात्वे-

कर्णिकान्तः पुटे तत्र द्वादशार्णं सरोरुहे।
तेजोमये कर्णिकान्तश्चन्द्रमण्डल मध्यगे॥
अकथादि त्रिरेखीये हलक्षत्रय भूषिते।
हंसपीठे मन्त्रमये स्वगुरुं शिवरूपिणम्॥

इति वचने मन्त्रमये वाग्भवबीज रूप गुरु मन्त्रमये इत्यनेन द्वादशार्णेत्यस्य पौनरुक्त्यापत्तेः। द्वादशार्णेति द्वादश अर्णाः वर्णाः यत्र तदिति व्युत्पत्त्या सरोरुहे द्वादशवर्णयोगः प्रतीयते।

यद्यप्यत्र द्वादशवर्णानां बिशेषाभिधानं तद्योगस्थानं च नाभिहितं तथापि-

हंसाभ्यां परिवृत्त पत्रकमले दिव्यैर्जगत्कारणैः।
विश्वोत्तीर्णमनेकदेहनिलयं, स्वच्छन्दमात्मेच्छया॥

इति गुरुगीतायां हंसाभ्यां परिवृत्तपत्रेत्यनेन तादृशसरोरुहस्य हंसयुक्त पत्रं प्रतीयते। तयोरेव षडावृत्त्या द्वादशवर्णा भवन्ति तद्युक्तं पत्रम्। अत्र पत्रावच्छेदे वर्णयोग कथनात् पत्रस्यापि द्वादश- संख्यकत्वं व्यक्तीभूतमिति सुधीभिर्भाव्यम्। द्वादशार्णसरोरुहं

विशेषयति नित्येति। नित्यलग्नमविनाभावसम्बन्धेन सहस्रदलपद्मेन मिलितम्। अवदातं शुक्लवर्णमद्भुतं ब्रह्मतेजोमयत्वादिनात्याश्चर्यम्। कुण्डली विवर काण्डमण्डितमिति। कुण्डल्याविवरं सहस्रदलकमल-कर्णिकास्थ शिवसमीपे कुण्डलीगमनपथरूपं छिद्रम्। तदधिकरण-भूतकाण्डं नालं चित्रिणी नाडी तेन भूषितम्। यथा मृणालोपरि पद्मस्थितिस्तद्वत् चित्रिणी नाडी रूप मृणालभूषितमित्यर्थः।

हिन्दी व्याख्या

श्लोकार्थ :- ब्रह्मरन्ध्रसरसीरुह के उदरस्थ, नित्य लग्न, अवदात, अद्भुत, कुण्डलीविवरकाण्ड से मण्डित, द्वादशवर्णात्मक सरसीरुह (पद्म) समस्त शिवोक्त-मन्त्र के उपासकों के लिये भजनीय है।

त्रिलोक उद्धार कर्ता सदाशिव ने यह स्तोत्र श्री गुरु के ध्यान योग का निरूपण करने के लिये कहा है। इस के लिये सर्व प्रथम श्री गुरु के अधिवास का स्थान निश्चित करना आवश्यक है। शिर-स्थान में ब्रह्म रन्ध्र स्थित है जिसको यहां सरसीरुह अर्थात् पद्म कहा गया है। इस ब्रह्म रन्ध्र विशिष्ट सरसीरुह के उदर अर्थात् अन्तः में द्वादश वर्णों से युक्त एक कमल है जिसकी उपासना का यहां उपदेश है। ब्रह्मरन्ध्र सरसीरुह का दूसरा नाम सहस्र-दल-पद्म है। इस सहस्र दल पद्म के उदर अर्थात् मध्य में बारह वर्णों (द्वादश-दल) से युक्त एक और कमल है जो भजनीय है। (उदर का अर्थ है कर्णिका)। अतः इस स्थान को संकेत करने के लिये कर्णिका शब्द का प्रयोग भी किया जाता है। मूल श्लोक में भजे एक वचन का प्रयोग शिव ने स्वयं अपने भजन के उपदेश के लिये किया है। अतः यहां शिवोपासना का अर्थ व्यञ्जित होता है। अर्थात् सभी शिवोपासकों के लिये यह द्वादश-वर्णों से युक्त मन्त्र उपासनीय है।

कङ्कालमालिनी तन्त्र में सहस्र दल पद्म का निरूपण करते हुए कहा है कि उसकी कणिका के अन्तर्गत अन्तरात्मा, ततः गुरु, इसके दोनों ओर सूर्य मण्डल एवं चन्द्र मण्डल हैं। इससे ऊपर महावायु और उसके पश्चात् ब्रह्मरन्ध्र है। कोई कणिकास्थ त्रिकोण के मध्य ब्रह्म-रन्ध्र का निरूपण करते हैं किन्तु यहां केवल कणिका की प्रतीति होती किसी त्रिकोण का अस्तित्व नहीं है अतः ब्रह्म रन्ध्र की स्थिति कणिका में ही स्वीकार करनी चाहिये। संस्कृत टीकाकार ने इस सम्बन्ध में श्यामा सपर्या नामक तन्त्र के वचनों को उद्धृत किया है।

द्वादशार्ण सरसीरुह के बारह वर्ण इस प्रकार हैं जो गुरु मन्त्र के रूप में स्मरण किये जाते हैं:-"स ह ख फ्रें ह स क्ष म ल व र यू म्" (सहखफ्रें-हसक्षमलवरयूं)।

इस सम्बन्ध में किसी का मत है कि द्वादशवर्ण से तात्पर्य बारहवाँ वर्ण अर्थात् वाग्भव बीज है ॥ ऐं॥ किन्तु यह समीचीन नहीं है। इस सम्बन्ध में टीकाकारने एक श्लोक उद्धृत किया है जिस में कणिका के अन्तः पुट में द्वादशार्ण सरोरुह में तेजोमय चन्द्रमण्डल का स्थान कहा है वहां अकथादि तीन रेखाओं एवं हलक्ष से विभूषित मन्त्रमय हंस पीठ पर स्व गुरु का स्मरण करे। टीकाकार की आपत्ति है कि यदि मन्त्रमय शब्द से वाग्भव बीज का तात्पर्य है तो द्वादशार्ण शब्द का प्रयोग कर पुनरुक्ति की क्या आवश्यकता थी; अर्थात् पुनरुक्ति की आवश्यकता न होने के कारण मन्त्रमय का अर्थ वाग्भव बीज न होकर द्वादशवर्णमय गुरु मन्त्र से ही तात्पर्य है।

यद्यपि यह स्पष्ट है कि यहां द्वादश वर्णों का नाम नहीं दिया है और न ही उनके स्थान का निर्धारण है किन्तु गुरु गीता के अनुसार यह पद्म हं स वर्णों से परिवेष्टित है, जहां गुरु का ध्यान करना चाहिये। इससे इस अर्थ का निर्णय होता है कि हं स वर्णों की छै वार पुनरावृत्ति है इस प्रकार प्रत्येक पत्र में एक वर्ण होने से कमल

पत्रों की संख्या बारह हो जाती है। विद्वानों द्वारा यह विषय भी विचारणीय है।

श्लोक में द्वादशार्ण शब्द का एक विशेषण नित्य लग्न है इस से तात्पर्य है कि इस द्वादशार्ण सरोरुह का सहस्र दल पद्म से अविनाभाव सम्बन्ध है। अवदात और अद्‌भुत दो विशेषण सहस्र दल के और हैं जिनसे इसके शुक्ल वर्ण होने का पता चलता है। आश्चर्य जनक रूप से यह सहस्रार पद्म ब्रह्म तेजमय है अतः इसके शुक्ल वर्ण होने में कोई सन्देह नहीं है। इसका अन्तिम विशेषण 'कुण्डली-विवर काण्डमण्डितम्' है। जैसे पद्म की स्थिति मृणाल पर होती है उसी प्रकार सहस्र दल पद्म चित्रिणी नाडी पर स्थित है। सहस्र दल पद्म के समीप शिव की स्थिति है जहां पहुँचने के लिये कुण्डली विवर अर्थात् कुण्डली गमन पथ (मार्ग) के रूप में एक छिद्र है जिसको ब्रह्म रन्ध्र भी कहते हैं। इसको ही काण्ड अर्थात नाल का रूप कहा है यही चित्रिणी नाडी है जिसके ऊपर सहस्र दल कमल स्थित है। चित्रिणी नाडी को ही यहां मृणाल की उपमा दी गई है ॥१॥

टिप्पणी :- हमारे गुरु वर श्री स्वामीजी महाराजने पुरुष रूप गुरु मन्त्र एवं स्त्रीरूप गुरु मन्त्र में भिन्नता प्रकट की है तथा जप के हेतु मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार लिखा है। पुंरूप-"ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रें हसक्षमलवरयूं हसखफ्रें हसौः" जैसा कि कहा है-

तारत्रयं समुच्चार्य 'हसखफ्रें' ततः परम्।
'हसक्षमलवरयूं हसखफ्रें हसौः' ततः ॥

यहाँ मूल द्वादशाक्षरों के क्रम में भी अन्तर है। श्री काली चरण जी की टीका में 'सहखफ्रें' क्रम है और यहां 'हसखफ्रें'।

स्त्री गुरुमन्त्र निम्न प्रकार है :-

"ऐं ह्रीं श्रीं सहखफ्रें सहक्षमलवरयूं सहखफ्रें सहौः" ॥

तस्य कन्दलित कर्णिकापुटे क्लृप्तरेखमकथादिरेखया।
कोण लक्षित हलक्षमण्डली भावलक्ष्यमबलालयं भजे ॥२॥

अमलाख्य टीका

उक्त पद्मकर्णिकामकथादि त्रिकोणमध्ये गुरुश्चिन्तनीयः अतस्तज्ज्ञानाय त्रिकोणं निरूपयिष्यन्नाह तस्येति। अस्यार्थः कन्दलितकर्णिकापुटे इति। कन्दलं परस्पराक्रमणपूर्वकं वाग्विवादः। अत्र लक्षित लक्षणया परस्पराक्रमणमात्रं गृह्यते। पुटम् आधारभूतस्थानम्। ततश्च तस्य पूर्वोक्त सहस्रदलकमल द्वादशदलकमलोभयस्य कन्दलिते परस्पराक्रान्ते कर्णिकात्मकाधार स्थाने अबलालयं भजे सेवे इत्यन्वयः। केचित्तु तस्य द्वादश-दलस्येति व्याख्यायन्ति। तन्न तथात्वे श्रीनाथस्य सहस्रदल कमलद्वादशदलकमलोभयस्थले स्थितिविधायकवक्ष्यमाणवचनानामसङ्गत्यापत्तेः।

अबला शक्तिः सा चात्र विन्दुत्रयाङ्कुरभूत वामाज्येष्ठा रौद्रीनामक त्रिशक्तिरूप रेखात्रय मिलित त्रिकोणरूपा कामकला तद्रूपालयमित्यर्थः।

कामकलायास्तद्रूपत्वमाह यामले-

'अथ कामकलां वक्ष्ये तत्तद्देवात्मरूपकम्।' इत्युपक्रम्य-

'त्रिविन्दुः सा त्रिशक्तिः सा त्रिमूर्तिः सा सनातनी'। इत्याद्युक्तम्। सा कामकला पूर्व दर्शित त्रिशक्तिरूपा इत्यर्थः। अबलालयं विशेषयति क्लृप्तरेखमकथादिरेखयेति। अकारादिषोडशस्वरैः वामा रेखा, ककारादिषोडशवर्णैर्ज्येष्ठारेखा, थकारादिषोडशभिः रौद्री रेखा इति रेखात्रयेण क्लृप्ता चिह्निता रेखा यत्र तादृशाबलयमित्यर्थः।

तदुक्तं बृहच्छ्रीक्रमे कामकलाप्रकरणे-

'विन्दोरङ्कुरभावेन वर्णावयवरूपिणी'॥ इति ॥

पुनः किम्भूतम् ? कोण लक्षितहलक्षमण्डलीभाव लक्ष्यमिति । कोणेषु उक्त त्रिकोणस्यान्तरालेषु सम्मुखदक्षिणवामकोणेषु लक्षितैः प्रकाशितैः हलक्ष वर्णैः मण्डलीभावेन तत्तद्वर्णाङ्कुर रूपेण लक्ष्यते ज्ञायते असौ तादृशमित्यर्थः । अत्र त्रिकोणस्य विशेषज्ञानं विना सम्यग्ध्यानं न भवतीत्यतः प्रमाणान्तरेण त्रिकोणं विशेषयति । अत्र त्रिकोणं वामावर्तेन लेखनीयम् ।

तदुक्तं शाक्तानन्द तरङ्गिण्याम्–

वामावर्तेन विलिखेदकथादि त्रिकोणकम् ।। इति ।।

काल्यूर्ध्वाम्नाये–

त्रिविन्दु परमं तत्त्वं ब्रह्म विष्णु शिवात्मकम् ।
वर्णमयं त्रिकोणं तु जायते विन्दुतत्त्वतः ।। इति ।।

तथा–

अकारादि विसर्गान्ता ब्रह्मरेखा प्रजापतिः ।
काकारादितकारान्ता विष्णुरेखा परात्परा ।
थकारादिसकारान्ता शिवरेखा त्रिविन्दुतः ।।

तन्त्र जीवने–

रजः सत्त्व तमोरेखा योनिमण्डल मण्डिता ।।

तथा–

उपरिष्टात् सत्त्वरेखा रजोरेखा स्ववामतः ।
तमोरेखादक्षभागे रेखात्रयमुदाहृतम् ।।

एतद्वचनपर्यालोचनयापि अकथादीनां वामावर्तत्वमायातम् ।

स्वतन्त्रतन्त्रे तु हलक्षमध्यमण्डितम् ।। इति ।।

एतेन हलक्षवर्णानां त्रिकोणमध्ये स्थितिरित्युक्तम् । अलं विस्तरेण ।। २ ।।

हिन्दी व्याख्या

श्लोकार्थ :— दूसरे श्लोक में अवलालय अर्थात् शक्ति के आलय अर्थात् आश्रय भूत स्थान के द्योतक त्रिकोण का स्मरण किया गया है। शक्ति के आलय रूप इस त्रिकोण की अकथ नामक तीन रेखायें हैं। इस त्रिकोण के तीन कोणों में ह ल क्ष वर्णों का स्थान है। अकथ नामक इस त्रिकोण के अन्तर्गत ही श्री पूज्य गुरु के ध्यान का विधान है। त्रिकोण के यथार्थ ज्ञान के बिना गुरु का ध्यान सम्भव नहीं है अतः त्रिकोण के स्वरूप का निरूपण करते हैं।

सहस्र दल पद्म एवं द्वादश दल पद्म की परस्पर आक्रान्त (कन्दलित) कर्णिका पुट के अन्तर्गत अवलालय अर्थात् शक्ति के अकथ त्रिकोण का स्थान है। (कर्णिका–पुट से तात्पर्य है कर्णिकात्मक आधारस्थान) किसी का मत है कि यह त्रिकोण द्वादशदल पद्म के अन्तर्गत है किन्तु यह उपयुक्त नहीं है क्योंकि ऐसा स्वीकार करने से आगे प्रतिपादित उस वचन से विरोध हो जावेगा जिसमें श्री नाथ गुरु की स्थिति को सहस्रदल एवं द्वादश दल उभय पद्मों के मध्य निरूपित किया गया है।

अवला यहां (कामकला) शक्ति का द्योतक है। त्रिकोण कामकला का रूप है इसके तीन बिन्दुओं से वामा, ज्येष्ठा, रौद्री नामक तीन रेखाएँ अङ्कुरित होती हैं जिन से मिलकर यह शक्ति का त्रिकोणात्मक स्वरूप आविर्भूत है। कामकला का यही स्वरूप है। इस में ही ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र की स्थिति है। त्रिकोणात्मक यह कामकला ही सनातनी त्रिबिन्दु, त्रिशक्ति, त्रिमूर्ति कही जाती है।

अवलालय नामक यह त्रिकोण अ क थ आदि तीन रेखाओं से परिवेष्टित है। अकार से विसर्ग पर्यन्त सोलह वर्णों से युक्त वामा रेखा है, ककार से तकार पर्यन्त सोलह वर्णों से युक्त ज्येष्ठा रेखा है तथा थकार से सकार पर्यन्त सोलह वर्णों से युक्त रौद्री रेखा है।

इस प्रकार रेखा त्रय से चिन्हित यह त्रिकोण सहस्त्रार एवं द्वादशदल उभय पद्मों के अन्तर्गत स्थित है। श्री क्रम के कामकला प्रकरण में कहा है कि यह शक्ति–बिन्दु के अङ्कुर रूप में परिणत होने पर शक्ति के अवयवों का वर्णों के रूप में आविर्भाव होता है। इस त्रिकोण के अतः में स्थित तीन कोणों में ह ल क्ष वर्णों का मण्डली भाव से अवस्थान है। अर्थात् तत् तत् वर्णों का अङ्कुर रूप में परिज्ञान होता है।

त्रिकोण के विशेष ज्ञान के बिना ध्यान का सम्यक् साधन सम्भव नहीं है अतः टीकाकार कालीचरणने अन्य प्रकार के प्रमाणों से भी त्रिकोण को प्रमाणित किया है। त्रिकोण की रचना वाम आवर्त से करने का विधान है। शाक्तानन्द तरङ्गिणी में लिखा है:–
"वामावर्तेन विलिखेद् अकथादि त्रिकोणकम्"।

काली ऊर्ध्वाम्नाय में कहा है कि त्रि बिन्दु ही परम तत्त्व है, यह तीनों बिन्दु ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवात्मक हैं। वर्णमय त्रिकोण का आविर्भाव बिन्दु तत्त्व से ही होता है, तथा आगे भी कहा है कि अकार से विसर्ग पर्यन्त ब्रह्म रेखा है जो प्रजापति के रूप में है। ककार से तकार पर्यन्त परात्परा विष्णु रेखा है। थकार से सकार पर्यन्त शिव रेखा है। इस प्रकार तीनों बिन्दुओं से विलिखित यह त्रिकोण ब्रह्मा, विष्णु और शिवात्मक तीन शक्तियों का केन्द्र भूत है। तन्त्र–जीवन ग्रन्थ में त्रिकोण की तीनों रेखाओं को रजः, सत्त्व एवं तम नाम से कहा गया है। ऊपर बिन्दु से सत्त्व रेखा का प्रारम्भ होता है, अपने वाम आवर्त से रजो रेखा एवं दक्ष भाग से ऊपर बिन्दु तक तमो रेखा है। उपर्युक्त इन कथनों से भी त्रिकोण के लेखन का वामावर्त से ही समर्थन मिलता है। स्वतन्त्र तन्त्रों में भी त्रिकोण के अन्तः में ह ल क्ष वर्णों के अवस्थान का समर्थन मिलता है ॥२॥

तत्पुटे पटुतडित्कडारिमस्पर्ध मानमणि पाटलप्रभम् ।
चिन्तयामि हृदि चिन्मयं वपुर्नादविन्दुमणिपीठमण्डलम् ॥३॥

अमला टीका

उक्त त्रिकोणमध्ये मणिपीठोपरि गुरुस्थितिरित्यतस्तत्र मणिपीठं वर्णयति तत्पुट इति । अयमर्थः । तत्पुटे उक्तत्रिकोण मध्ये नादविन्दु-मणिपीठमण्डलं हृदि मनसि चिन्तयामीत्यन्वयः । नादविन्दुमणिपीठ-मण्डलमिति । नादविन्दुभ्यां सह मणिपीठमण्डलं अथवा नादश्च विन्दुश्च मणिपीठमण्डलं च तदित्यर्थः । केचित्तु नादबिन्दुरूपमणि॰ पीठमण्डलमिति वदन्ति । तन्न तथात्वे नादस्य शुक्लवर्णत्वात् बिन्दोः रक्तवर्णत्वात् पटुतडित्कडारिमेत्यादि विशेषणस्यासंलग्नापत्तेः ।

तथाहि–

> परशक्तिमयः साक्षात्त्रिधाऽसौ भिद्यते पुनः ।
> विन्दुनादो बीजमिति तस्य भेदाः समीरिताः ॥

इति शारदावचनस्य परशक्तिमयो विन्दुः ते बीजनादबिन्दवः वह्नीन्द्वर्कस्वरूपिणः इत्यर्थकत्वे नादस्य चन्द्रस्वरूपत्वात् शुक्लत्वे विन्दोः सूर्यस्वरूपत्वात् रक्तत्वमायातम् ।

व्यक्तमाह षट्चक्रवर्णने–

"तदूर्ध्वे नादोऽसौ बलधवल सुधाधार सन्तानहासी" ॥ इति ॥

बृहच्छ्रीक्रमे–

> "बालसूर्यप्रतीकाशमासीद्विन्दुमदक्षरम् ॥ इति ॥"

एवं च तयोः शुक्लरक्तत्वे मणिपाटलप्रभत्वं सर्वथाऽसम्भवम् । अतः प्रदर्शितार्थं एवं साधीयान् । एवं चाधोनादः ऊर्ध्वे विन्दुः मध्ये मणिपीठमण्डलं चिन्तनीयमिति व्यवस्था ।

व्यक्तमाह कङ्कालमालिनी तन्त्रे गुरुध्याने–

सहस्रदलपद्मस्थमन्तरात्मानमुत्तमम् ।
तस्योपरि नादबिन्दोर्मध्ये सिंहासनोज्ज्वलम् ।
तस्मिन्निजगुरुं नित्यं रजताचलसन्निभम् ।। इत्यदि ।।

मणिपीठमण्डलं विशेषयति पटुतडित्कडारिमस्पर्धमानमणिपाटलप्रभमिति । स्वकार्यसुसम्पादनयोग्यत्वं पटुत्वम् । ततश्च स्वप्रकाशरूपस्वकार्यसम्पादनविरोधिदोषराहित्येन सर्वव्यापकातिप्रकाशमानानां तडितां कडारिम्ना कडारिम्नासदृशकडारिम्ना पिङ्गलवर्णेन स्पर्धमानैर्मणिभिः पाटलप्रभमित्यर्थः । मणिपीठस्य मणिमय सर्वाङ्गत्वात् । अस्य नादबिन्दुमणिपीठमण्डलस्थ वपुश्चिन्मयं ज्ञानमयमित्यर्थः । अन्ये तु चिन्मयं वपुः द्वादशस्वरस्वरूपं वाग्भवबीजं गुरुमन्त्रं वपुश्चिन्तनीयमिति वदन्ति । तन्मन्दम् । गुरोः शुक्लवर्णत्वात् तद्बीजस्यापि शुक्लत्वेन मणिपाटलप्रभत्वविशेषणं न सङ्गच्छते ।

हिन्दी व्याख्या

श्लोकार्थः– उक्त त्रिकोण के अन्तर्गत मणिपीठ के ऊपर श्री गुरु की स्थिति कही गई अतः मणि पीठ पर उनके चिन्मय शरीर का ध्यान करना चाहिये । उक्त त्रिकोण के अन्तः में नाद, बिन्दु एवं मणिपीठ स्थित हैं । वहां मणि पीठ पर विराजमान गुरु का चिन्तन विहित है । कोई नाद बिन्दु रूप मणिपीठ ऐसा अर्थ करते हैं वह समीचीन नहीं है । ऐसा स्वीकार करने पर "पटुतडित्कडारिम्" इत्यादि विशेषण संलग्न नहीं हो सकता क्यों कि नाद का वर्ण शुक्ल है एवं बिन्दु का वर्ण रक्त है । यदि मणि पीठ को नाद बिन्दु मय कहा जाय तब मणिपीठ का तडित् के समान पिङ्गल वर्ण असम्भव हो जाता है । शारदा तिलक का वचन भी टीकाकार ने नाद, बिन्दु एवं मणिपीठ तीनों को पृथक् दर्शाने के लिये उद्धृत किया है । पर शक्ति मय एक बिन्दु का पुनः त्रिधा विभाजन हो जाता है । पुनः विभाजन होने पर तीन बिन्दुबीज, नाद एवं बिन्दु नाम से प्रसिद्ध हैं ।

इन को ही वह्नि, चन्द्र एवं सूर्य नामों से सम्बोधित किया गया है। नाद शुक्ल वर्ण होने से चन्द्र है। बिन्दु रक्त वर्ण होने से सूर्य स्वरूप है। षट्-चक्र वर्णन में स्पष्ट कहा है :-

"तदूर्ध्वे नादोऽसौ बलधवल सुधाधार सन्तान हासी।"

अर्थात् नाद धवल सुधाधार के सदृश श्वेत वर्ण है तथा श्री क्रम में बिन्दु को बाल सूर्य के समान रक्त वर्ण कहा है :-

"बालसूर्य प्रतीकाशमासीद्बिन्दुमदक्षरम्।"

इस प्रकार नाद एवं बिन्दु के श्वेत एवं रक्त होने के कारण मणिपीठ को नाद-बिन्दु मय नहीं कहा जा सकता क्यों कि मणिपीठ का वर्ण पिङ्गल तडिदाकार है। अतः त्रिकोण के अन्तर्गत नाद, बिन्दु, मणिपीठ तीनों पृथक हैं। त्रिकोण के अधः भाग में नाद, ऊर्ध्व भाग में बिन्दु तथा मध्य में तडित् के सदृश पिङ्गल वर्ण मणिपीठ है जो गुरु का उज्ज्वल सिंहासन है उस पर आसीन रजताचल सदृश गुरु का ध्यान करना चाहिये। ऐसा कङ्काल-मालिनी तन्त्र में कहा है :-

"सहस्रदल पद्मस्थमन्तरात्मानमुत्तमम्।
तस्योपरि नादबिन्दोर्मध्ये सिंहासनोज्ज्वलम्॥
तस्मिन्निजगुरुं ध्यायेत् रजताचलसन्निभम्॥"

मूल श्लोक म मणिपीठ मण्डल के विशेषण के रूप में "पटु-तडित्कडारिस्पर्धमान पाटलप्रभम्" कहा है। यहां पटु का अर्थ है स्व कार्य को भली भांति सम्पादन करने की योग्यता- 'स्वकार्यसुसम्पादनयोग्यत्वं पटुत्वं'। तथा स्व प्रकाश रूप स्वकार्य के सम्पादन में विरोधी दोषों से (शाहित्य) रहित होने के कारण सर्व व्यापक अति प्रकाशमान (कडारि-पिङ्गलवर्ण) पिङ्गल वर्ण की तडित् के समान पाटल प्रभा से युक्त मणिपीठ कहा गया है।

मणिपीठ का सर्वाङ्ग मणिमय है। यहां नाद, बिन्दु एवं मणिपीठ मण्डल को चिन्मय अर्थात् ज्ञानमय कहा है। कुछ विद्वानों का मत है कि नाद-विन्दु-मणिपीठ मण्डल का चिन्मय रूप वाग्भव बीज रूप मन्त्र है उसका यहां चिन्तन करना चाहिये किन्तु यह मत मन्द है। गुरु का शुक्ल वर्ण है, उनके मन्त्र का बीज भी शुक्ल वर्ण का है अतः पाटलप्रभम् विशेषण की सङ्गति नहीं है। इस कारण यहां वाग्भव बीज 'ऐं' की स्थिति सर्वथा असङ्गत है ॥ ३ ॥

टिप्पणी :-

जो साधक मन्त्र योग की साधना करते हैं उनके लिये गुरु प्रदत्त विधि के अनुसार न्यास, विनियोग, ध्यान का किंचित् निरूपण करते हैं।

न्यास

ॐ ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः; ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः; ॐ ह्रूं मध्यमाभ्यां नमः; ॐ ह्रैं अनामिकाभ्यां नमः; ॐ ह्रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः; ॐ ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। इसी प्रकार हृदयादि न्यास करना चाहिये।

श्रीगुरुः विनियोग

अस्य श्री पादुका मन्त्रस्य दक्षिणामूर्ति ऋषिः गायत्रीछन्दः श्री गुरु देवता प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

मन्त्र

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सोः हंसः शिवः सोऽहं हंसः स्वरूप निरूपणहेतवे श्री गुरवे नमः रक्ताम्बोपेत श्री गुरुपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

श्रीगुरु ध्यानम्

वन्दे गुरु पद द्वन्द्वमवाङ्‌ मनस गोचरम्।
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः ॥

ध्यान के पश्चात् पञ्चोपचार से पूजन करे ।

परम गुरु

परम गुरु का न्यास आदि भी उपर्युक्त प्रकार से करना चाहिये ।

मन्त्र

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः सोऽहं हंसः शिवः स्वच्छ प्रकाश विमर्श हेतवे परम गुरवे नमः । पीताम्बोपेत-प्रतिभानन्दनाथ-परम गुरु श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

ध्यान एवं पञ्चोपचार पूर्ववत् ।

श्री परमेष्ठि गुरुः

अस्य श्री परमेष्ठि गुरुमन्त्रस्य दक्षिणामूर्ति ऋषिः गायत्रीछन्दः परमेष्ठिगुरु देवता प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ।

मन्त्र

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः हंसः शिवः सोऽहं हंसः स्वात्माराम परमानन्द पञ्जर विलीन तेजसे परमेष्ठि गुरवे नमः शुक्लाम्बोपेत स्वभावानन्दनाथ परमेष्ठि गुरु श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

ध्यान पंचोपचार पूर्ववत् ।

पञ्चोपचार

लं पृथिव्याऽऽत्मकं गन्धं समर्पयामि ।
हं आकाशादिकं पुष्पं समर्पयामि ।
यं वाय्वात्मकं धूपं समर्पयामि ।
रं वह्न्यात्मकं दीपं समर्पयामि ।
वं अमृतात्मकं नैवेद्यं समर्पयामि ।
सं सोमात्मकं ताम्बूलं समर्पयामि ।

ऊर्ध्वमस्य हुतभुक्शिखात्रयं तद्विलास परिबृंहणास्पदम् ।
विश्वघस्मर महोच्चिदोत्कटं व्यामृशामि युगमादिहंसयोः ॥४॥

अमला टीका

हंसपीठोपरि नादविन्दु मध्यस्थ मणिपीठोर्ध्वत्रिकोणे गुरोरधिवासः। अतः तयोर्ज्ञानार्थं हंसत्रिकोणयोः स्वरूपं ज्ञापयिष्यन्नाह ऊर्ध्वमिति । अस्यार्थः । अहं आदि हंसयोर्युगं व्यामृशामि । एवमस्य मणिपीठस्योर्ध्वं हुतभुक्शिखात्रयं व्यामृशामि । तद्विलासेन हुतभुक्शिखात्रयस्य सुप्रकाशेन परिबृंहणास्पदं उद्दिश्यमानमणिपीठरूपास्पदं व्यामृशामीति तत्प्रतिबन्धकविषयचिन्तादित्यागेन स्वस्वस्थाने स्थिरतरं भावयामीति प्रत्येकं क्रियान्वयः ।

हुतभुक्शिखात्रयमिति । हुतभुक्शिखादित्रयं हुतभुक्शिखात्रयम् । शाक पार्थिवादित्वात् मध्यपद लोपे तत्पदसिद्धिः । हुतभुक् वह्निस्तच्छिखा वह्निविन्दोरङ्कुरभूतदक्षिणादीशान पर्यन्त गता वामारेखा । आदिना ईशानकोणस्थचन्द्रविन्दोरङ्कुर भूतेशानादिमरुत्कोणपर्यन्तगता ज्येष्ठारेखा । मरुत्कोणस्थसूर्यविन्दोरङ्कुरभूत तदादिवह्निविन्दुसङ्गता रौद्रीरेखा । एवं त्रिविन्दु त्रिरेखामिलितत्रिकोणं कामकला रूपम् ।

तदुक्तं बृहच्छ्रीक्रमे —

> विन्दोरङ्कुरभावेन वर्णावयवरूपिणी ।
> विन्द्वग्रे कुटिलीभूता याम्यादीशानमागता ॥
> मनोरमा शक्तिरूपा सा शिखा चित्कलापरा ।
> शक्तीशानगता रेखा प्रत्यगाग्नेयमात्रगा ॥
> ज्येष्ठा सा परमेशानि त्रिपुरा परमेश्वरि ।
> व्यक्तीभूय पुनर्वामे प्रथमांकुरमागता ।
> इच्छयानादसंलग्ना रौद्री शृङ्गाटमागता ॥ इति ॥

सा शिखेति आग्नेयमात्रगा वह्निसम्बन्धिनी मात्रा सा शिखा वह्निशिखेत्यर्थः ।

माहेश्वरी संहितायाम्–

सूर्यश्चन्द्रस्तथा वह्निरिति विन्दुत्रयं भवेत् ।
ब्रह्मा बिष्णुस्तथा शम्भुरिति रेखात्रयं मतम् ॥ इति ॥

एतत्त्रिकोणमध्ये गुरुस्थितिं स्पष्टमाह प्रेमयोगतरङ्गिणी-धृतवचनम् ।

सहस्रमुपक्रम्य–

तन्मध्ये तु त्रिकोणं तु विद्युताकारमुत्तमम् ।
विन्दुद्वयं च तन्मध्ये विसर्गरूपमव्ययम् ॥
तन्मध्ये शून्यदेशे च शिवः परमसंज्ञकः ॥ इति ॥

अतएव शङ्कराचार्येणापि आनन्दलहर्यां इदं सुव्यक्तमभिहितम्। श्रीनाथस्य विसर्गारूढत्वात् इति ललितारहस्यकारेणोक्तं च। विसर्गस्तु त्रिकोणोर्ध्ववर्ति चन्द्रसूर्यरूप विन्दुद्वयमिति ।

आदि हंसयोर्युगमित्यत्रादिनान्तरात्मसंज्ञक परमहंस एव गृह्यते न तु दीपकलिकाकारजीवात्महंसः । अयं हंसः प्रकृति पुरुषरूपः ।

तदुक्तमागमकल्पद्रुमे पंचशाखायाम्–

हङ्कारो विन्दुरित्युक्तो विसर्गः स इतिस्मृतः ।
विन्दुः पुरुष इत्युक्तो विसर्गः प्रकृतिः स्मृतः ॥
पुंप्रकृत्यात्मको हंसस्तदात्मकमिदं जगत् ॥ इति ॥

केचित्तु अस्य मणिपीठस्योर्ध्वं आदिहंसयोर्युगं व्यमृशामीति व्याख्यायन्ति । तन्मन्दं पूर्वोक्तकङ्कालमालिनीवचनबोधितहंसोर्ध्वं नादविन्दुमध्यस्थमणिपीठे नादविन्दोरधःस्थहंसस्थितेः सर्वत्रासम्भवात् ।

एतेन हुतभुक्शिखासमिति केषांचित् कल्पितपाठोनिरस्तः। तथात्वे ऊर्ध्वमस्येत्यस्य वैयर्थ्यापत्तेः। यद्वा अस्य मणिपीठमण्डलस्योर्ध्वं आदिहंसयोर्युगं व्यामृशामि। कङ्कालमालिनीवचने नादविन्दुमध्य-स्थितमणिपीठाधः स्थले हंसस्थितिः प्राप्ता। अत्र मणिपीठोर्ध्वस्थिति कथने महान् विरोधः। अतः तयोरविवादाय हंस विशेषयति हुतभुक्शिखात्रयमिति। ततश्चाधःस्थले हंस इत्यानुपूर्विकस्य स्थितिः ऊर्ध्वं पूर्वोक्तत्रिकोणाकार कामकलारूपेण परिणतस्य तस्य स्थिति-रित्यविरोधः कामकलाया हंसरचितमूर्तिकत्वात्।

पुनर्विशेषयति विश्वघस्मर महोच्चिदोत्कटमिति। ङ मक्षे लृ घसौ चाथ घसिङक्षरणे व्युसक्। तथा च-

"देञ् याचे चिदिह्लादे दीप्तौ च्युदकनुदिच्छिदि वा"॥

इति धातु पाठात् घसधातोर्भक्षणार्थत्वम्। चिदो दीप्त्यर्थत्वम्। ततश्च विश्वानां घस्मरा भक्षिका अर्थात् संहारिकाया महोच्चित् महाप्रकाशस्तया उत्कटं दूरतरं सर्वाधिकबलवदित्यर्थः।

हिन्दी व्याख्या

श्लोकार्थ :- उपर्युक्त कामकला रूप त्रिकोण के ऊर्ध्व भाग में अर्थात् नाद विन्दु के मध्य में स्थित मणिपीठ के ऊर्ध्व भाग में गुरु का अधिवास कहा गया है। अतः हंस के ज्ञान के लिये हंस एवं त्रिकोण दोनों का ज्ञान आवश्यक है। इस मणिपीठ पर त्रिकोण की तीन रेखाओं का अग्नि सूर्य चन्द्र के रूप में विमर्श होता है। अग्नि आदि के सुप्रकाश से मणिपीठ के प्रकाश का विशदीकरण होता है। एवं इस प्रकाश के प्रतिबन्धक विषय-चिन्ता आदि के त्याग से अग्नि, सूर्य, चन्द्र रूप शिखात्रय की तत् तत् स्थानों पर दृढतर भावना करनी चाहिये।

हुतभुक्शिखात्रयं में मध्य पद लोपी समास है अतः इसका अर्थ "हुतभुक्शिखादि त्रयं" अर्थात् अग्नि आदि तीन शिखायें अग्नि, सूर्य

एवं चन्द्र नामक शिखाओं से तात्पर्य है । बह्नि विन्दु की अङ्कुरभूत वामा रेखा, इन्दु की अङ्कुरभूत ज्येष्ठा रेखा तथा सूर्य की अङ्कुर-भूत रौद्री रेखा है। इस प्रकार तीन विन्दुओं से मिलकर यह कालकला रूप त्रिकोण विरचित है।

वृहत् श्रीशास्त्र में कहा है कि विन्दु के अङ्कुर के रूप में विकसित कुण्डलिनी का त्रिकोण के रूप में दो प्रकार का विकास होता है। एक इसका नाद रूप विकास है, दूसरा वर्णावयव के रूप में विकास कहा गया है। विन्दु के आगे चलने पर यह रेखा कुटिल हो जाती है। ईशानकोण तक विकसित होने वाली मनोरमा शक्ति रूपा अग्नि रेखा परा नामक चित् कला है। ईशानकोण से प्रारम्भ होकर ज्येष्ठा रेखा साक्षात् त्रिपुरा है। सूर्य में ही त्रिपुर का विकास होता है अतः यह सूर्य रेखा है। इच्छा से नाद से संलग्न रौद्री रेखा प्रथम अङ्कुर तक आती है। इस प्रकार यह कुण्डलिनी शक्ति शृंगाटक अर्थात् त्रिकोणत्व को प्राप्त होती है।

यह शिखा के रूप में आग्नेय मात्र गामिनी है अतः इसको वह्नि शिखा कहते हैं। अग्नि, सूर्य, चन्द्र यह तीनों वह्नि की शिखायें हैं। 'विश्व ग्रसन् शीलत्वात् वह्नि'। अर्थात् वह्नि समस्त विश्व को भस्मतात् कर देती है अतः इसको वह्नि कहा गया है। त्रिकोण की तीनों रेखायें वह्नि की शिखाओं का ही स्वरूप हैं। अतः इनको हुतभुक् शिखात्रय कहा है।

माहेश्वरी संहिता में कहा है– सूर्य, चन्द्र एवं वह्नि यह तीन विन्दु हैं। इन से विकसित ब्रह्मा, विष्णु तथा शम्भु नामक तीन रेखायें हैं।

इस त्रिकोण के मध्य गुरु स्थिति को स्पष्टतया प्रेमयोग तरङ्गिणी में कहा है :– सहस्रार के मध्य उत्तम विद्युताकार त्रिकोण है। उसके अन्तर्गत विन्दु द्वय के रूप में अव्यय रूप (अक्षर) विसर्ग की स्थिति है। विसर्ग के दोनों विन्दुओं के बीच शून्य प्रदेश है

इस प्रदेश में परम शिव की प्रतिष्ठा है। आनन्द लहरी में भी श्री आचार्य शंकरने इसको स्पष्ट रूप में कहा है तथा ललिता रहस्य में भी कहा है कि त्रिकोण के ऊपर भाग में सूर्य चन्द्र नामक दो विन्दु विसर्ग शक्ति के हैं।

हंस युगल वर्णों से अन्तरात्मा नामक परम हंस का भाव ही व्यक्त है, न कि दीपकलिकाकार जीवात्मक हंस। हंस का स्वरूप यहां प्रकृति पुरुष रूप है।

आगम कल्प द्रुम की पंचशाखा में भी कहा है :- " 'हं कार ' विन्दु है एवं ' स ' विसर्ग शक्ति है। विन्दु पुरुष का स्वरूप है एवं विसर्ग शक्ति प्रकृति है"। इस प्रकार हंस पुरुष एवं प्रकृति का एकात्म रूप है तथा यह जगत् की उत्पत्ति पुरुष एवं प्रकृति से ही कही गई है इसी लिये यह जगत् हंसात्मक है।

कोई विद्वान हंस के युग को मणिपीठ पर अङ्कित करते हैं। यह मन्द बुद्धि का मत है। कंकाल मालिनी तन्त्र के अनुसार हंस की स्थिति नाद विन्दु से ऊपर है। अत: नादविन्दु के मध्यस्थ मणिपीठ में हंस की स्थिति होना असम्भव है। इस प्रकार स्वीकार करने पर कतिपय इस उपर्युक्त हुतभुक् शिखात्रय पाठ के स्थान पर हुतभुक् शिखासखं ऐसा पाठ मानते हैं। वह आपत्ति भी हंस की स्थिति नाद विन्दु के ऊपर मान लेने से निरस्त हो जाती है। मूल श्लोक में हुतभुक् शिखात्रयं हंस युगं का विशेषण है। यह हंस की स्थिति त्रिकोण से ऊपर है। कामकला रूप त्रिकोण की मूर्ति हंस द्वारा रचित है। अत: इसको त्रिकोण के ऊपर स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती।

'युगमादि हंसयो:' का दूसरा विशेषण ' विश्व घस्मर महोच्चिदोत्कटमिति ' शब्द है।

घस्मर शब्द घस् धातु से बना है। घस् धातु का प्रयोग भक्षण के अर्थ में होता है तथा चिद् का अर्थ दीप्ति है। अतः उपर्युक्त विश्व घस्मर आदि विशेषण का अर्थ हुआ कि हंस का महोच्चिदात्मक अर्थात् महाप्रकाशात्मक स्वरूप विश्व का भक्षक है। अर्थात् सर्वाधिक बलवान है। अथवा हंस के महाप्रकाशात्मक स्वरूप से विश्व के अंधकारमय रूप का सर्वथा नाश हो जाता है। शक्ति के त्रिकोणात्मक स्वरूप का हंस के सामरस्यात्मक परमात्म रूप से ही आविर्भाव होता है तथा हंस के इसी परमात्म रूप में विलय हो जाता है॥ ४॥

तत्र नाथ चरणारविन्दयोः कुङ्कुमासव परीमरन्दयोः।
द्वन्द्वमिन्दुमकरन्दशीतलं मानसं स्मरति मङ्गलास्पदम् ॥५॥

अमला टीका

श्रीनाथचरणारविन्दचिन्तनाधिकरणपीठं निरूप्येदानीं तद्धयानयोगं सूचयन्स्तौति तत्रेति द्वाभ्यां। अस्यार्थः तत्र मणिपीठस्थ त्रिकोणमध्ये नाथचरणारविन्दयोर्द्वन्द्वं मानसं स्मरति ध्यायते इत्यन्वयः। चरणद्वन्द्वं विशेषयति कुङ्कुमासवपरीमरन्दयोरिति।

'वीप्सेदम्भाव चिह्नेषु तेषु भागे परिप्रती।'

इति वोपदेवीयात् परेर्भागार्थत्वम्। ततश्च कुंकुमासवानां लाक्षारसाभ परमामृतानां यः परिर्भागः स एव मरन्दो मकरन्दो ययोस्तादृशयोरित्यर्थः। "झरीमरन्दयोः" इति पाठे झरी झरणं निःसरणमिति यावत्। ततश्च "कृदभिहितभावो द्रव्यवत् प्रकाशते"। इत्युक्तेः कुंकुमासवानां झरी अर्थात् झरणाश्रयकुंकुमासवो मरन्दो ययोरित्यर्थः।

द्वन्द्वं कीदृशम्? इन्दुमकरन्द शीतलम् इन्दोश्चन्द्रस्य यो मकरन्दः अमृत किरणरूपः तद्वत् शीतलम्। यथा चन्द्रामृतकिरणेन उत्तापनिवृत्तिः तथा पदद्वन्द्व-सेवनेन दुःखतापशान्तिरिति भावः।

मङ्गलास्पदं अभिप्रेतार्थसिद्धिप्रदं स्थानम् । तच्चरणस्थाने मनोऽभिनिवेशे सर्वाभीष्ट सिद्धिरिति तात्पर्यम् ।

हिन्दी व्याख्या

वहां मणिपीठमण्डल पर विराजमान गुरु के चरणों का ध्यान करता हूं ।

गत श्लोक में चरणारविन्द चिन्तन के अधिकरण भूत अर्थात् आधारभूत पीठ का निरूपण करने के पश्चात् इस श्लोक में उनके ध्यानयोग की सूचना दी गई है ।

कुंकुमासवपरीमरन्दयोः पंवित चरणारविन्दयोः का विशेषण है । श्रीनाथ के चरणारविन्द से कुंकुम अर्थात् लाक्षारस के समान आभा से युक्त परमामृत रूपी मकरन्द जिन चरणों से झरता है, तथा जिन चरणारविन्दों का मकरन्द चन्द्रमा की किरणों से अनुस्यूत अमृत के समान शीतल है अर्थात् भक्त जनों के उत्तप्त मानस को शान्त करने वाला है । अर्थात् जिन चरणों के ध्यान से दुःख ताप की शान्ति होती है ।

श्रीनाथ के चरण युगल अभिप्रेत अर्थ की सिद्धि देने वाले हैं । उन चरणों में मन का अभिनिवेश करने से सब अभीष्टों की सिद्धि होती है ॥ ५ ॥

निसक्तमणि पादुका नियमिताघकोलाहलं,
स्फुरत्किसलयारुणं नखसमुल्लसच्चन्द्रकम् ।
परामृतसरोवरोदित सरोजसद्रोचिषं,
भजामि शिरसि स्थितं गुरुपदारविन्दद्वयम् ॥ ६ ॥

अमला टीका

निसक्तेति । अस्यार्थः अहं शिरसिस्थितं पूर्वोक्तपीठोपरिस्थितं

गुरुपदारविन्दद्वयं भजामि ध्याये इत्यन्वयः। पदारविन्दद्वयं विशेषयति।

निसक्तमणि पादुका नियमिताद्य कोलाहलमिति। निसक्तमणि पादुकया सेवित मणिपादुका द्वारा नियमितः निरस्तीकृतः अघकोलाहलः पापानां प्रादुर्भावो येन तादृशमित्यर्थः। यद्वा निसक्तो निबद्धो मणिर्यत्र पादुकायां सा मणिपीठमण्डलरूप-पादुका तया नियमितः अघकोलाहलः येनेत्यर्थः। तत्पादुकोपरि गुरुचरण चिन्तनेन पापनाशात्। अथवा निसक्त आरुढो मणिगुरु-चरणरूपचिन्तामणिर्यासु पञ्चपादुकासु ताभिर्नियमिताघकोलाहल-मित्यर्थः। तश्च पादुकाध्यान पूर्वकं तदुपरि गुरुचरणचिन्तनेनैव पापनाशनात् पापनाशे पञ्चपादुकानां ध्यानरूप व्यापार साध्यत्वेन द्वारत्वमिति।

स्फुरत्किसलयारुणम्। स्फुरतां किसलालयानां पल्लवानाम-रुणतुल्यमरुणं यत्रेति। आम्रकेन्दुकादिपल्लवानां प्रथमोद्गमे रक्त-वर्णत्वात् तत्रैव दृष्टान्तः।

नखसमुल्लसच्चन्द्रकं नखा एव समुल्लसच्चन्द्राः निर्मलप्रकाशमान चन्द्रस्वरूपा यत्रेत्यर्थः।

परामृतसरोवरोदित सरोजसद्रोचिषम् परामृतसरोवरे उदितं यत् सरोजं पद्मं तद्वत् सद्रोचिषं निर्मलप्रकाशो यस्येति।

अयं भावः श्रीनाथस्य चरणाभ्यां निरन्तरं परमामृतं निःसरति।

अतएवोक्तम् पूर्णानन्देन—

सुधाधारासारं निरवधि विमुञ्चन्नतितराम्।
यतेः स्वात्मज्ञानं दिशति भगवान्निर्मलमतेः॥ इति॥

एवं परामृतं सरोवरस्वरूपं तदुपरिस्थितं चरणं पद्मवत् प्रकाशते इति। ननु उक्त पद्मद्वयकर्णिकापुटे गुरुस्थितिर्विधीयते। तत्किमधःस्थितद्वादशदलकमल कर्णिकायां किंवा ऊर्ध्वस्थ सहस्रदल कर्णिकायामित्याकाङ्क्षायामत्र वदन्ति।

वृहच्छ्रीक्रमे-

सर्वोपरि ततो ध्यायेत् पश्चिमाननपङ्कजम्।
स्रवन्तममृतं दिव्यं देव्यङ्गे कमलान्तरे॥

देव्यङ्गे गुरुशक्त्यङ्गे इत्यर्थः।

यामले- छत्रं मूर्ध्नि सहस्रपत्रकमलं रक्तं सुधावर्षिणम्॥इति॥

गुरुगीतायां-

हंसाभ्यां परिवृत्तकमले दिव्यैर्जगत्कारणै-
विश्वोत्तीर्णमनेकदेवनिलयं स्वच्छन्दमात्मेच्छया।
तत्तद्योग्यतया स्वदेशिततनुं भावैकदीपांकुरं
प्रत्यक्षाक्षरविग्रहं गुरुपदं ध्यायेद्द्विवाहुं गुरुम्॥ इति॥

यामा सपर्याधृत वचनम्-

शिरः पद्मे सहस्रारे शुक्लवर्णे त्वधोमुखे।
तरुणारुणकिञ्जल्के सर्ववर्णविभूषिते॥
कर्णिकान्तःपुटे तत्र द्वादशार्णसरोरुहे।
तेजोमये कर्णिकान्तश्चन्द्र मण्डल मध्यगे॥
अकथादि त्रिरेखीये हलक्षत्रय मण्डिते।
हंसपीठे मन्त्रमये स्वगुरुं शिवरूपिणम्॥ इति॥

एवमादिवचनैर्द्वादशदलकमलकर्णिकायां गुरोरधिष्ठानं विहितम्।

कङ्कालमालिनी तन्त्रे-

सहस्र दल पद्मस्थमन्तरात्मानमुत्तमम् ।
तस्योपरि नादविन्दोर्मध्ये सिंहासनोज्वलम् ।।
तस्मिन्निजगुरुं नित्यं रजताचलसन्निभम् ।। इत्यादि ।।

यामले-

सहस्रदल पङ्कजे सकलशीतरश्मिप्रभं वराभयकराम्बुजम्- इत्यादि ।

पुरश्चरण रसोल्लासे - श्रीमहादेव उवाच-

सहस्रार ततो नित्ये पङ्कजे परमाद्भुते ।
पद्मस्य बीजकोशे तु भावयेत् स्वगुरुं सदा ।।

श्रीपार्वत्युवाच-

सहस्रारे महापद्मे सदा चाधोमुखे प्रभो ।
गुरुस्थितिः कथं देव सततं वद निश्चयम् ।।

श्रीमहादेव उवाच-

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यदेतत् पृष्टमुत्तमम् ।
सहस्रारं महापद्मं सहस्रदलसंयुतम् ।।
सदाशिवपुरं तत्तु नित्यानन्दमयं सदा ।
नानागंधयुतं पद्म सहजानन्दमन्दिरम् ।।
सदा चाधोमुखं पद्मं बीजमूर्ध्वमुखं सदा ।
त्रिकोणाकार रूपेण कुण्डली संयुतेन च ।। इत्यादि ।।

बालाविलासतन्त्रे श्रीदक्षिणामूर्तिरुवाच ।—

प्रातरुत्थाय धवले सहस्रारे गुरुं स्मरेत् ।
अधोमुखे महापद्मे सर्ववर्णविभूषिते ।।

अकथादि त्रिरेखाढच हलक्षत्रय भूषिते ।
तदन्तश्चन्द्रबिम्बस्थ हंसपीठे स्मिताननम् ॥

श्रीदेव्युवाच--

अधोमुखे गुरुस्तत्र कथं तिष्ठति च प्रभो ।

श्रीदक्षिणामूर्तिरुवाच–

अधोमुखस्य पद्मस्य कर्णिकामध्य संस्थिम् ।
चन्द्र बिम्बञ्चोर्ध्ववक्त्रं हंसस्ततः स्थितः ॥ इति ॥

एतदादिभिर्वचनैः सहस्रदलकर्णिकायां गुरोरवस्थितिर्विधीयते । एवं चोभयकल्पे विहिते श्रीनाथस्य आज्ञया तयोरेकतरम् अवधार्यानुष्ठेयमिति सिद्धान्तः ।

अतएवोक्तं कुलार्णवे एकादशोल्लासे–

पारम्पर्यागमाम्नायं मन्त्राचारादिकं प्रिये ।
सर्वं गुरुमुखाल्लब्धं सफलं स्यान्न चान्यथा ॥

हिन्दी व्याख्या

इस श्लोक में पूर्वोक्त पीठों पर स्थित सहस्रार में गुरु पदारविन्द द्वय का ध्यान करने का आदेश है ।

मणिपूर स्थित पादुका की सेवा से पापों के कोलाहल का अन्त हो जाता है, उन पादुकाओं पर स्थित गुरु चरणारविन्द के ध्यान से पापों का क्षय हो जाता है । अथवा विकल्प से अर्थ है कि वह पादुकाएँ जिन में गुरु चरणरूप चिन्तामणि निशक्त हैं उनके द्वारा पापों का कोलाहल शान्त हो गया है । तात्पर्य यह कि पञ्च पादुकाओं के ध्यान के पश्चात् गुरु चरणों का चिन्तन करने से पाप नष्ट हो जाते हैं । यहां पादुकाएँ ध्यानरूप व्यापार के साधन के रूप प्रतिपादित हैं ।

गुरु चरण नवीन पल्लवों के समान अरुण हैं तथा नखों का प्रकाश चन्द्र के प्रकाश के समान उज्ज्वल है। परामृत में उदित कमल की सुन्दर कान्ति के समान जिन चरणों की कान्ति है। इसका अर्थ है कि श्री गुरु के चरणों से निरन्तर परामृत का प्रवाह होता रहता है। अतएव पूर्णानन्द ने कहा है :-

"सुधाधारासारं निरवधि विमुञ्चन्नतितराम्"

अर्थात् निरन्तर सुधाधारा के प्रवाह से गुरुचरणों के द्वारा साधक योगी की मति आत्मज्ञान से निर्मल हो जाती है। इस प्रकार अमृत सरोवर पर स्थित चरणों का प्रकाश कमल के प्रकाश के समान है।

यहां यह शंका होती है कि सहस्रार की अधः स्थित द्वादश दल कर्णिका में गुरु की स्थिति है अथवा ऊर्ध्वस्थ सहस्रदल कर्णिका में। श्री वृहत् श्री क्रम में कहा है कि गुरुचरणों की स्थिति सर्वोपरि है जहां से देवी के अङ्ग से अमृत का प्रवाह होता है। दूसरा प्रमाण टीकाकारने यामल का दिया है। "छत्रं मूर्ध्नि सहस्रपत्र-कमलं रक्तं सुधार्बाषणम्"। तीसरा प्रमाण गुरु गीता का है:-

"हंसाभ्यां परिवृत्त पत्र कमले. . . . ।
प्रत्यक्षाक्षर विग्रहं गुरुपदं ध्यायेद्द्विवाहुं गुरुम्"॥

यहां भी हंस द्वारा परिवृत्त पत्रों के कमल में द्विवाहु गुरु का ध्यान कहा है। श्यामासपर्या में शिरःस्थित अधोमुख सहस्रदल पद्म में गुरु की स्थिति कही है। यहां द्वादश दल सरोरुह की कर्णिका के अन्तः पुट में तेजोमय चन्द्रमण्डल में अकथादि त्रिकोण के अन्तर्गत हंस पीठपर शिवरूप स्वगुरु की स्थिति कही है। कंकाल मालिनी तन्त्र में सहस्रदल के अन्तर्गत अन्तरात्मा के ऊपर नाद बिन्दु के मध्य उज्ज्वल सिंहासन पर निजगुरु की स्थिति कही है। पुरश्चरण रसोल्लास में परमाद्भुत सहस्रार पद्म के बीजकोष में स्व गुरु की

स्थिति वर्णित है। यहां महादेव पार्वती को उत्तर के रूप में कहा कि सदा पद्म अधोमुख है उसके अन्तर्गत बीज ऊर्ध्वमुख है जो त्रिकोणाकार है तथा कुण्डलिनी से संयुक्त है वहां गुरु का स्थान है। बाला विलास तन्त्र में भी सहस्रार के अधोमुख महा पद्म में अकथादि त्रिकोण के मध्य हंस पीठ पर गुरु की स्थिति कही है। अतः इन वचनों से सहस्र दल कर्णिका में ही गुरु की स्थिति कही गई है। किन्तु किसी का मत यह भी है कि द्वादशदल कमल की कर्णिका में गुरु का स्थान है अतः अमला टीकाकार कलीचरण ने अपना निर्णय दिया है कि अपने गुरु अपने गुरु की आज्ञा से किसी एक मत को स्वीकार कर अनुष्ठान करे। इस मत के समर्थन में कुलार्णव तन्त्र के एकादश उल्लास का उद्धरण दिया है।

" परम्पर्यागमाम्नायं . . . . . सफलं स्यान्न चान्यथा"

अर्थात् परम्परागत आगम, आम्नाय, मन्त्राचार आदि की गुरु से उपलब्धि करने पर ही सफलता प्राप्त होती है अन्यथा नहीं ॥६॥

पादुका पञ्चकस्तोत्रं पंचवक्त्राद्विनिर्गतम् ।
षडाम्नायफलप्राप्तं प्रपंचे चाति दुर्लभम् ॥ ७ ॥

अमला टीका

स्तोत्रफलश्रुतिमाह। पादुकापञ्चकोस्तोत्रमिति। पदरक्षणाधारः पादुका तासां पञ्चकम्। पद्मम् ॥ १ ॥ तत्कर्णिकास्थले अकथादि त्रिकोणम् ॥ २ ॥ तदन्तर्नादविन्दुमणिपीठमण्डलम् ॥ ३॥ तदधःस्थ हंसः ॥ ४ ॥ पीठोपरि त्रिकोणम् ॥ ५ ॥ समुदायेन पञ्चसंख्यकम्।

अथवा पद्मं ॥१॥ त्रिकोणं ॥२॥ नादविन्दु ॥३। मणिपीठमण्डलम् ॥४॥ तदूर्ध्वस्थ त्रिकोणाकारकामकलारूपेण परिणतो हंसः ॥५॥ इति पञ्चसंख्यकम्। तस्य स्तोत्रम्। फलश्रुतिसहितसप्तश्लोकात्मकमित्यर्थः।

पञ्चवक्त्राद्विनिर्गतमिति । शिवस्य पञ्चवक्त्राणि यथा लिङ्गार्चने तन्त्रे—

सद्योजातं पश्चिमे तु वामदेवं तथोत्तरे ।
अघोरं दक्षिणे ज्ञेयं पूर्वे तत्पुरुषं स्मृतम् ।
ईशनं मध्यतोध्येयं चिन्तयेद्भक्तितत्परः ।। इति ।।

तेभ्यो विनिर्गतम् तैरुक्तम् ।

षडाम्नाय फलप्राप्तमिति । षण्मुखानि यथापूर्वोक्तानि पंच । षष्ट वक्त्रं तु पूर्ववक्त्रस्याधस्तात् गुप्तं तामसम् । एतत्तु शिवतन्त्रे सद्योजातादिषट् वक्त्रन्यासे "ॐ हं ह्रीं औं ह्रीं तामसाय स्वाहा ।" इत्यनेन तत्रोक्त ध्याने "नीलकण्ठमधोवक्त्रं कालकूट स्वरूपिणम्" इत्यनेन च प्रकटितम् ।। मिलित्वा षट्वक्त्राणि भवन्ति । एभिः षट्वक्त्रैराम्नायते कथ्यतेऽसौ इति षडाम्नायः शिवोक्तस्तोत्र समुदायः। तस्य फलं तत्तन्मन्त्रसमुदायविहितकर्मफलं प्राप्यते येनेत्यर्थः ।

प्रपञ्चे लिङ्गाद्याब्रह्म पर्यन्त माया प्रकटितसंसारे । अति दुर्लभमिति अतिदुःखेन लभ्यते यत्तदतिदुर्लभं तल्लाभकरण पुण्यपुञ्जजनक जन्मान्तरीय तपसः क्लेशस्वरूपत्वात् दुःख लभ्यत्वमिति भावः ।

।। श्री कालीचरण कृता पादुकापञ्चकस्तोत्रस्य टिप्पणी समाप्ता ।।

हिन्दी व्याख्या

सातवां श्लोक अन्तिम है इसमें फलश्रुति कही गई है ।

श्लोकार्थः— पादुका पञ्चक स्तोत्र पञ्चवक्त्र शिव के मुखारविन्द से कहा गया है । इस पादुकापञ्चक के स्तोत्र पाठ से षडाम्नाय के फल की प्राप्ति होती है ।

चरणों के रक्षा के आधारभूत उपकरण का नाम पादुका है। यह पादुकाएँ यहां संख्या में पांच निरूपित की गईं हैं अतः इस स्तोत्र को पादुकापञ्चक कहा है।

१) सहस्रदल पद्म प्रथम पादुका है।

२) पद्म की कर्णिका में स्थित अकथादि त्रिकोण द्वितीय पादुका है।

३) त्रिकोण के अन्तर्गत स्थित नाद, विन्दु एवं मणिपीठ मण्डल तृतीय पादुका है।

४) चौथी पादुका नाद विन्दु के अधः स्थित हंस को कहा है।

५) मणिपीठ पर कल्पित त्रिकोण पांचवीं पादुका है।

पादुकाओं की एकत्र संख्या पांच है। अथवा इनका बिकल्प भी है।—

१) पद्म २) त्रिकोण ३) नाद विन्दु ४) मणिपीठ मण्डल ५) ऊर्ध्वस्थ त्रिकोणाकार कामकला के रूप में परिणत हंस।

फल श्रुति सहित श्लोकों की संख्या सात है।

यह पञ्च पादुका स्तोत्र पञ्चवक्त्र शिव के मुख से निकला है। लिङ्गार्चन तन्त्र में– १) सद्योजात पश्चिमाभिमुख २) वामदेव उत्तराभिमुख ३) अघोर दक्षिणमुख तथा ४) पूर्वाभिमुख तत्पुरुष हैं। ५) ईशान की स्थिति मध्य में है। भक्ति में तत्पर होकर तत्स्थानों पर इनका चिन्तन करना चाहिये। ऐसा लिङ्गार्चन तन्त्र में कहा है। शिव के पञ्च मुखों से यह स्तोत्र कहा गया है।

षष्ठ आम्नाय पांचों मुखों के नीचे गुप्त है। शिव-तन्त्र में षट् आम्नाय की चर्चा है एवं वक्त्रन्यास में भी छः का विधान है। इनका मन्त्र है– "ॐ हं ह्रीं औं ह्रीं तामसाय स्वाहा"। इस

प्रकार वक्त्र न्यास में दिये गये ध्यान के आधार पर नीलकण्ठ नामक छठवां अधोवक्त्र है जो कालकूट के समान है। " नीलकण्ठमधोवक्त्रं कालकूटस्वरूपिणम् "।

सब मिलकर छे मुख कहे हैं। शिवोक्त स्तोत्र समुदाय षट्-वक्त्रों का कथन है। प्रत्येक आम्नाय की पूजा में प्रयुक्त मन्त्रों में उनका फल विहित है। जो फल उन स्तोत्रों से प्राप्त होता है वह सम्पूर्ण फल पादुका पञ्चक के ध्यान से होता है।

समस्त माया प्रकटित संसार में जो दुर्लभ पुण्य पुञ्ज जनक कष्टसाध्य तप के फल हैं वह सब सुलभ ही श्री गुरु पादुका के ध्यान से उत्पन्न होते हैं ॥ ७ ॥

॥ इति हिन्दी व्याख्या सहितं पादुकापञ्चक स्तोत्रं समाप्तम् ॥

—:०:—

परिशिष्ट

पादुका पञ्चक स्तोत्र में पद्म, त्रिकोण, नाद विन्दु, मणिपीठ एवं हंस नामक पांच पादुकाओं की चर्चा है। चिद्‌विलास ग्रन्थ में स्थिति कुछ भिन्न है। ग्रन्थ का निम्न श्लोक विचारणीय है :-

स्वप्रकाश शिव मूर्तिरेकिका, तद्विमर्श तनुरेकिका तयोः।
सामरस्य वपुरिष्यते परा, पादुका परशिवात्मनो गुरोः॥

योगिनी हृदय की दीपिका नामक टीका में अमृतानन्द योगी ने अपनी गुरुपरम्परा के अनुसार इस श्लोक में तीन पादुकाओं का विवेचन किया है, प्रथम स्वप्रकाश शिव, द्वितीय तद्विमर्श एवं तृतीय सामरस्य नामक परा को परशिव की पादुकाओं के रूप में माना है। किन्तु हमारे गुरु पूज्यपाद स्वामीजी महाराज ने केवल सामरस्य रूप परा को ही परशिव की पादुका के रूप में स्वीकार किया है। स्वप्रकाश शिव एवं विमर्श रूप दो तत्त्वों का विलय परा शक्ति में हो जाता है। अतएव पर शिव की पादुका के रूप में केवल परा ही शेष रह जाती है। वस्तुत: पादुका की कथित परिभाषा से भी पादुका की संख्या एक ही निर्धारित होती है। कहा है:- **"परा परात्मन: स्वात्मनः परानन्दमयी स्वव्यतिरेक कवलनोद्युक्ता परा शक्तिः पादुकेति गीयते"**। अर्थात् परापरात्मक स्वात्मा की परानन्दमयी परा शक्ति जब स्वयं अपनी इच्छा से स्वयं के अतिरिक्त समस्त भेदात्मक संसार को ग्रसने के लिये उद्यत होती है तब उसको 'पादुका' के नाम से सम्बोधित किया जाता है। पृथ्वी से शिव पर्यन्त छत्तीस तत्वों का विलय परा शक्ति में हो जाता है किन्तु स्वयं परा का पृथक अस्तित्व रहता है। यद्यपि उसका परम शिव के साथ एक संश्लिष्ट रूप होते हुए भी

अदर्शन नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार सामरस्य रूप परा ही पर शिव की एक मात्र पादुका अवगत होती है। पादुका चार में पादुका की उपासना के अनन्तर ही गुरु के चरणों की उपलब्धि होती है। अथवा पादुका–पञ्चक के शब्दों में यों कहा जा सकता है कि अन्तिम पादुका हंस की उपलब्धि के पश्चात् ही गुरु चरणों का साक्षात्कार होता है। यहां परा का भी पर शिव में विलय हो जाता है। इसी को अद्वैत रूप सुधा समुद्र में अभिषेक की संज्ञा दी गई है। यह समरसीकरण की अवस्था है। इसमें गुरु चरणों का प्रकाशात्मक स्वरूप होता है तथा समरसात्मक सुधा से आप्लावित गुरु चरणों से कुण्डलिनी के प्रत्यावर्तन क्रम में अमृत का स्राव होता है जिससे साधक के समस्त चक्रों का सुधा धारा से अभिषेचन होता है।

समाधि दशा में परा एवं परशिव के सामरस्यात्मक अभिन्न स्वरूप की अपरोक्षानुभूति होती है तथा व्युत्थान दशा में विश्व का ब्रह्मरूप में दर्शन होता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि अमृतानन्द योगी ने तीन पादुकाओं की चर्चा कर सगुणरूप परम गुरु के स्वरूप का ही निरूपण किया है। तथा संकेत भी किया है :– "**परम शिवस्तेनाद्वैतभावना सैवाहमस्मीति समावेश रूपा सैवामृतमित्यभिव्यज्यते।**" यहां परम शिव से अद्वैतभावनात्मक समावेश को ही अमृत कहा है। उनके अनुसार अद्वैत समावेश के पक्षात् ही प्रसाद ग्रहण करने का विधान है।

प्रसाद स्वीकार करने से अभिप्राय है कि साधक को प्रकाश–विमर्श एवं समष्टि रूप पादुकात्रय की भावना को एकत्र मिलाकर ही साधक को ध्यान करना चाहिये, इससे हो सर्व व्यापी शिवत्व का समुल्लास होता है। कहा है :–

यत्र यत्र मिलिता मरीचयः तत्र तत्र विभुरेव जृम्भते ।
तत्सतां हि नियमावलम्बिनां, ध्यान पूजा विडम्बनम् ॥

अर्थात् पादुकात्रय के मेलन से प्राप्त विद्या के अभिषेचन से प्रमोदरूप परम शिव प्रकाशित होते हैं । 'प्रमोद लक्षणं परम शिव स्वरूपं प्रकाशते ।' ऐसा टीकाकार ने लिखा है । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अमृतानन्द योगी ने परम शिव और पर शिव में अन्तर नहीं माना है । परन्तु स्वामीजी महाराज ने परम शिव को सगुण एवं परशिव को निर्गुण कहा है । अतएव परशिवात्मक दशा में एक प्रकाश-विमर्श की समष्टि रूप परा ही पादुका के रूप में शेष रहती है । जिसका समाधि दशा में पर-शिव में विलय हो जाता है । इस प्रकार मेलन रूप अद्वैत समाधि का जो साधक अवलम्बन करते हैं उनके लिये अन्य प्रकार से ध्यान पूजन कथा विडम्बना मात्र है ।

चरण

प्रसंग वश यहां चरणों की समालोचना भी आवश्यक है । पादुका की उपासना का ध्येय चरणों की उपलब्धि ही है । सौन्दर्य लहरी के डिण्डिम भाष्य में रामकवि लिखते हैं कि वेदान्त के अनुसार अविद्या की आवरण और विक्षेप नामक दो शक्तियां हैं । अविद्या आवरण शक्ति के द्वारा एक रूप ब्रह्म को आवृतकर विक्षेप शक्ति के द्वारा नानात्व में प्रदर्शित करती है । चरणों के ध्यान से अविद्यात्मक मूलभूत भेदज्ञान का निरास हो जाता है । चरणों का ध्यान ब्रह्म-ज्ञान रूप निर्विकल्प समाधि का जनक है जो साधक को सकल एवं निष्कल ब्रह्म के स्वरूप से परे तुर्यातीत स्थिति में ले जाता है । अतः चरणों को महाप्रकाश एवं विमर्श द्वय के रूप में प्रतिपादित किया है । कहा है- **"चरण शब्देन महाप्रकाश-विमर्श द्वयमुच्यते ।"** चरण द्वय का सामरस्यात्मक स्वरूप ही परब्रह्म नाम से सम्बोधित होता है । चरण कमल की व्याख्या करते हुए रामकवि लिखते हैं-

"तदेव चरणं भक्षकं- चर गतिभक्षणयोरिति धातुः। कमलञ्च विकास संकोचधर्मित्वात् |तस्य जाग्रत् रूपेण संकोचः स्वस्वरूपेण विकासश्चक्रमस्यापि विकास-संकोचौ स्वभावसिद्धौ इत्थं तव महाप्रकाश विमर्शरूपं चरणात्मना परिणतं।"

जो अज्ञानरूप अन्धकार का भक्षण कर जाते हैं वह चरण नाम से कहे जाते हैं। चर धातु के गति के अर्थ में चरण शब्द से समस्त लोकों में व्यापकता का अभिप्राय है।

"चरति गच्छति सर्वमपि लोकं व्याप्नोतिचरति भक्षयति सर्व-मज्ञान निकुरुम्बमिति कर्तरि कारके सति अधिकरण व्युत्पत्या ल्युट् प्रत्यये चरणमिति सिद्धम्।"

विकास-संकोच धर्मी होने से चरणों को कमल की उपमा दी गई है। जिस प्रकार कमल का दिन में विकास होता है तथा रात्रि में संकोच हो जाता है उसी प्रकार जाग्रत अवस्था में चरणों का भेदात्म संसार के रूप में संकोच होता है तथा स्व आत्म स्वरूप में स्थित होने पर ब्रह्माकार होने से विकास कहा जाता है। इस प्रकार विकास एवं संकोच चरणों के स्वभाव से सिद्ध है अतः इनको कमल कहा गया है।

चर धातु का अर्थ राति है अतः यातायात करने से चरणों को कुण्डलिनी परक भी कहा है।

अभिन्न निमित्तोपान रूप अर्धनारीनटेश्वर को जो स्त्री रूप में भवानी नाम से आराधना करते है वह रूप भी प्रकाश-विमर्श का सामरस्य है। सौन्दर्य लहिरी की नृसिंह स्वामीकृत गोपालसुन्दरी टीका के अनुसार भवानी के चरणों को शुक्ल, रक्त, मिश्र, निर्वाण नामक चार रूपों में निरूपित किया है। सत्त्व गुण प्रधान शुक्ल, रजोगुण प्रधान रक्त, तमोगुण प्रधान मिश्र एवं चतुर्थ चरण गुणातीत होने से निर्वाण नाम से कहा जाता है। शुक्ल-रक्त चरणों का

स्थान आज्ञा चक्र है, मिश्र चरण का स्थान आज्ञा चक्र से ऊपर हृत्कमल है तथा सहस्रार में निर्वाण की स्थिति कही गई है। शुक्ल के देवता विष्णु, रक्त के देवता ब्रह्मा, मिश्र के देवता रुद्र तथा निर्वाण के देवता सदाशिव हैं। रक्त चरण कमल से उद्भूत रज से सिञ्चनकर ब्रह्मा लोकों की रचना करते हैं। शुक्ल चरण के पङ्क से उद्भूत सत्व के अभिषेचन से बिष्णु रक्षा करते हैं, मिश्र चरणों के पङ्क से उद्भूत तमोगुण से सिञ्चित कर हर संहार करते हैं तथा निर्वाण नामक तुर्य चरण में सदाशिव से निरुपाधि बोध का निरन्तर स्राव होता रहता है। महाप्रकाश विमर्श की सामरस्य रूप भवानी ही गुरु पद है। यही पद त्रिपुर सुन्दरी आदि नामों से प्रसिद्ध है।

महार्थ मञ्जरी नामक ग्रन्थ में योगी महेश्वरानन्दनाथ ने गुरु को विश्व व्यवहार का प्रकाशक होने से सर्वानुग्राहक कहा है। गुरु शब्द स्वात्मरूप परम शिव का पर्याय ही है। इसीलिये शिव सूत्रों में 'गुरुरुपाय:' अर्थात् गुरु को ही उपाय रूप में प्रतिपादित किया है, तथा ज्ञान-क्रिया रूप लक्षण से लक्षित स्वातन्त्र्य शक्ति ही गुरु के चरणों के रूप में कल्पित है। कहा है :—

चर्यंते, गम्यते, प्राप्यते, बुध्यते, भक्ष्यते चाभ्यां विश्वमिति हि चरणावित्युच्येते।

जिनके द्वारा विश्व का संसरण, प्राप्ति, बोध तथा भक्षण होता है वह चरण नाम से सम्बोधित है। गति एवं भक्षण के योग से सत्ता की स्फुरणात्मक व्याप्ति रूप कर्म का संकेत करने के लिये चरण शब्द का प्रयोग है। पाद (पैर) नामक शरीर के अङ्ग के रूप में चरण शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। प्रामाणिक वाक्य निम्न प्रकार है :—

भोग्य भोक्तृषु भावेषु भिषत्स्वनिमषत्सु च।
देशकालदिगाख्येषु स्थूल सूक्ष्म परेषु च॥
सत्ता स्फुरणक व्याप्ता गतिभक्षणयोगत:।
कर्मणा चरणाख्येयं न तु पादतया प्रिये॥

सकल एवं निष्कल चरणों से विश्व का व्यवहार सिद्ध होता है तथा समस्त संसार के संहार से निर्वाण रूप तुर्य चरण की कल्पना है, जो कि ज्ञान क्रिया के अन्त: बहि: प्रतिबिम्बन से अनुप्राणित अशेष विश्व का विलास होता है यही परमेश्वर का पारमैश्वर्य है, इसको ही स्वातन्त्र्य, स्पन्द, स्फुरत्ता आदि शब्दों से आगम शास्त्र में सम्बोधित किया है। ज्ञान-क्रिया ही दो चरणों के रूप प्रतिपादित हैं।

गुरुचरणों को नमस्कार करना ही साधक की साधना है। वाङ-मन-काया से विषय का (चरणों का) एकीकरण नमन शब्द का अर्थ है। साधक के चित्त का साध्य से तादात्म्य होने का नाम ही नमस्कार है :—

नम शब्दगत वर्णद्वय के विन्यास से चतुर्थ्यन्त पद के प्रयोग से समस्त इच्छाओं के आवेदन के अर्थ में उन्मनी भाव का द्योतक है। अर्थात् नम शब्द मन का उलटा है। मन का भी जहां विलय हो जाता है वह नम: शब्द का तात्पर्य है। अतएव चरणों को नमस्कार करने का अर्थ है मन की समस्त क्रिया को गुरु चरणों में विलय कर देना।

॥ इति ॥

शुद्धि पत्रम्

अशुद्ध	पृष्ठ	पङ्क्ति	शुद्ध
चर्मण बद्धः	२	११	चर्मणा बद्धः
साक्षात् साक्षाद	२	१३	साक्षाद
तन्मत्र	२	१५	तन्मंत्रं
हो सफल	३	१५	ही सफल
वेदादि बीजरूप	१०	७	वेदादि के बीजरूप
आरोपित	११	७	आरोपित कर
आपने	११	११	अपने
शिवसर्ग	१४	१६	शिव सर्ग
अन्तरस्थ	१६	७	अन्तःस्थ
उत्तम	२०	८	उत्तम साधन
के	२२	१०	को
शृंगार	३६	३	शृंगाट
पापैः	४०	१३	पाशैः
समाविष्ट	४३	१२	समाविष्टः
होता है	४४	२८	होता है न कि वर्णात्मक स्वरूप का ।
विकास	४५	१	विकसित रूप
सृष्टि की	४५	२	सृष्टि में भी
शाबलय	५२	२२	शावलालय
विन्दुबीज	५७	२७	विन्दु बीज
काल कला	६४	४	काम कला
चन्द्रामुत	६६	२५	चन्द्रामृत
किसलालयानां	६८	१३	किसलयानां
भगवान्नर्मल	६८	२३	भगवान्निर्मल
यामा	६९	१५	श्यामा
देवो	७२	१४	देवी
महादेव	७३	१	महादेव ने
परम्प	७३	१२	पारम्प
षष्ट	७४	८	षष्टं
षष्ठ	७५	२२	षष्टं

-:०:-

श्री पीताम्बरापीठ, दतिया (म. प्र.) से प्रकाशित

ग्रन्थ-सूची

क्र.	नाम पुस्तक	लेखक/टीकाकार	माध्यम	मूल्य
१.	श्री बगलामुखी रहस्यम्	राष्ट्रगुरु १००८ श्री स्वामीजी महाराज पीताम्बरा-पीठ	संस्कृत	१८-००
२.	पञ्चोपनिषद् (प्रकाश भाष्य)	" " "	"	४-५०
३.	प्रश्नोपनिषद् (प्रकाश भाष्य)	" " "	"	१-००
४.	आनन्दलहरी शङ्कराचार्य	श्री रामकवि डिण्डिम भाष्य एवं गोपाल सुन्दरी टीका	"	७-००
५.	नारदीय शिक्षा नारदमुनि विरचित	भट्ट शोभाकर विरचित शिक्षा विवरणोपेता टीकासहित	"	१-५०
६.	श्री महात्रिपुरसुन्दरी पूजा पद्धति	राष्ट्रगुरु पूज्यपाद १००८ श्री स्वामीजी महाराज	"	५-००
७.	कामकला विलास	पुण्यानन्दनाथ	"	५-००
८.	महाविद्याचतुष्टयम् (तारा-धूमावती भुवनेश्वरी-मातङ्गी)	राष्ट्रगुरु १००८ श्री स्वामीजी महाराज	"	८-००
९.	रेणुका-तंत्रम्	" " "	"	६-००
१०.	शरभ-तंत्रम्	" " "	"	५-००
११.	श्री विद्यारत्नसूत्रम् गौडपादाचार्य कृत	श्री शंकरारण्यमुनिकृत दीपिका सहितम्	"	३-००
१२.	पञ्चस्तवी	" " "	"	०-५०
१३.	तांत्रिक-पञ्चांग	राष्ट्रगुरु १००८ श्री स्वामीजी महाराज	"	७-००
१४.	घेरण्ड संहिता-घेरण्ड मुनि	" " "	संस्कृत-हिन्दी	५-००

क्र.	नाम पुस्तक	लेखक /टीकाकार	माध्यम	मूल्य
१५.	प्रत्यभिज्ञाहृदयम् शाक्त दर्शन	राष्ट्रगुरु १००८ श्री स्वामीजी महाराज	हिन्दी	२-००
१६.	ईश्वर गीता कूर्मपुराणान्तर्गत	" "	हिन्दी	६-००
१७.	वैदिक-उपदेश	" " "	"	५-००
१८.	वैदिक-उपदेश	अनु. श्री जी. एन. पिंगले	अंग्रेजी	१५-००
१९.	अथर्ववेदाङ्ग ज्योतिष	अनु. पं. छोटेलाल शर्मा आचार्य पं. ओं. नाराण द्विवेदी	हिन्दी	१-००
२०.	पुरश्चरण पद्धति	स्व. योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति शास्त्री	"	२-५०
२१.	लेख-संग्रह	राष्ट्रगुरु १००८ श्री स्वामीजी महाराज	"	१२-००
२२.	वेदान्त प्रबोध सत्यबोधाश्रम प्रणीत	अनु. डा. शिवशरण शर्मा	संस्कृत-हिन्दी	२-००
२३.	सिद्धान्त रहस्य	राष्ट्रगुरु १००८ श्री स्वामीजी महाराज	हिन्दी	३-००
२४.	सिद्धान्त रहस्य	अनु. श्री शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी	संस्कृत	५-००
२५.	सिद्धान्त रहस्य	अनु. सी. डी. पान्डे	अंग्रेजी	५-००
	सिद्धान्त रहस्य	अनु. डा. अयाचित	मराठी	यंत्रस्थ
२६.	सौंदर्य लहरी पद्यानुवाद	अनु. स्व फौजदार बलवीरसिंह	पद्य हिन्दी	१-००
२७.	परश्चरण	श्री सूर्यप्रकाश गोस्वामी	पद्य	१-००
२८.	त्रिपुरा महिम्न स्तोत्र	स्व. योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति शास्त्री	संस्कृत-हिन्दी	३-००
२९.	चिद्-विलास (श्री विद्या रहस्य)	राष्ट्रगुरु १००८ श्री स्वामीजी महाराज	"	१-५०
३०.	चिद्-विलास	अनु. डॉ॰ योगेश मिश्र	अंग्रेजी सजिल्द	३-३० ७-००
३१.	सप्तविंशति रहस्यम्	राष्ट्रगुरु १००८ श्री स्वामीजी महाराज	संस्कृत	७-००
३२.	वातुलनाथ सूत्र अनन्तशक्तिपादकृत	पं. कृष्णानन्द बुधौलिया	संस्कृत-हिन्दी	२-००

क.	नाम पुस्तक	लेखक /टीकाकार	माध्यम	मूल्य
३३.	शिवसूत्रं-भक्तिसूत्रञ्च	राष्ट्रगुरु १००८ श्री स्वामीजी महाराज ऋज्वर्थ बोधिनी कृति	संस्कृत	१-००
३४.	शिवसूत्रं स्पंदकारिका	किशोरीलाल चउदा	संस्कृत-हिन्दी	१-५०
३५.	मातृका चक्र विवेक	ले. सिद्धश्री स्वतन्त्रानन्दनाथ भाष्य-शिवानन्द अनु. कृष्णानन्द बुधोलिया	"	१५-००
३६.	स्वरोदय विज्ञान	संकलनकर्ता मास्टर मोतीलाल	हिन्दी	३-००
३७.	योग विज्ञान प्रथम भाग	अज्ञात	"	१६-००
३८.	योग विज्ञान द्वितीय भाग	अज्ञात	"	४-००
३९.	योग-दर्शन महर्षि पातञ्जलि प्रणीत	अनन्तपण्डितकृत वृति	संस्कृत	२-५०
४०.	योग दर्शन महर्षि पातञ्जलि प्रणीत	अनु. डा. योगेश मिश्र	अंग्रेजी	४-००
४१.	छिन्नमस्ता नित्यार्चन	" " "	"	६-००
४२.	ताराकर्पूरराजस्तोत्र	" " "	हिन्दी-पद्य	१-५०
४३.	केनोपनिषद्	अनु. डा. योगेश मिश्र, जयपुर	हिन्दी	२-००
४४.	ईशावास्योपनिषद्	" " "	"	३-००
४५.	माण्डूक्योपनिषद्	टीकाकार-पं. कृष्णानन्द बुधौलिया	"	१-७५
४६	कठोपनिषद्	टीकाकार-बदनसिंह	"	५-५०
४७.	मुण्डकोपनिषद्	" "	"	६-००
४८.	पराप्रवेशिका महामाहेश्वराचार्य क्षेमराज विरचित	टीकाकार-पं. कृष्णानन्द बुधौलिया	हिन्दी पद्या-नुवाद एवं टीका	०-७५
४९.	शाक्त सौरभ	ले. श्री वदनसिंह	हिन्दी	७-००
५०.	शाक्त सौरभ (ज्ञान खण्ड)	" "	"	१२-००
५१.	ललिता सहस्रनाम	भास्करराय विरचित सौभाग्यभास्कर अनु॰ कृष्णानन्द बुधोलिया	संस्कृत	३२-००
५२.	भैरव-विज्ञान	पं. कृष्णानन्द बुधौलिया	हिन्दी	९-००
५३.	प्रश्नोपनिषद्	हिन्दी अनुवाद अनुवादक-कृष्णानन्द बुधौलिया		५-००

क्र.	नामपुस्तक	लेखक/टीकाकार	माध्यम	मूल्य
५४.	बह्वृचोपनिषद्	अप्पय दीक्षित कृत संस्कृत भाष्य एवं कृष्णानन्द कृत हिन्दी टीका	संस्कृत-हिन्दी	१-००
५५.	भैरव विज्ञान	कृष्णानन्द बुधौलिया	हिन्दी	९-००
५६.	तीर्थभारतम्	डॉ. श्री. भा. वर्णेकर	संस्कृत	२०-००
५७.	भगवान बटुक भैरव	संकलनकर्ता राधारमण दूर्वार	संस्कृत	२१-००
५८.	हनुमत् उपासना	" "	संस्कृत हिन्दी	यन्त्रस्थ

आवश्यकतानुसार मूल्य में परिवर्तन हो सकता है।

श्री गुरुपूजन पद्धति

॥ वेदव्यासाय नमः ॥

आषाढ्यां पौर्णमास्यां प्रातः स्नानं कृत्वा पश्चात् क्षौरं विधाय मध्याह्न स्नानं कुर्यात् । पूजासामग्रीं गृहीत्वा आचम्य प्राणानायम्य देवतार्चनं कृत्वा व्यासपूजामारभेत् । तद्यथा आचम्य प्राणानायम्य करशुद्धिं कृत्वा प्रणवस्य देवता ऋषिच्छन्दांसि विदित्वा न्यासं विधाय ध्यानं कृत्वा तिथ्यादि संकल्प्य प्रथमं पीठपूजादीनां ततः व्यासादीनां स्थापितदेवता सहितानां पृथक् पृथक् पूजनाद्यर्चनमहं करिष्ये इति संकल्पं विधाय सलिलं भूमौ निक्षिपेत् । ततः भूत-शुद्धयादि न्यासं विधाय शुचौ देशे स्वासनाग्रे पीठं कृत्वा पूजयेत् ।

अथ पीठपूजनम्

ॐ गुरुभ्यो नमः
ॐ परमगुरुभ्यो नमः
ॐ परात्परगुरुभ्यो नमः
ॐ परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः
ॐ गणपतये नमः
ॐ मूलप्रकृत्यै नमः
ॐ मण्डूकाय नमः
ॐ मूलाधाराय नमः
ॐ कालाग्निरुद्राय नमः
ॐ कूर्माय नमः
ॐ आधारशक्तये नमः
ॐ आनन्दाय नमः
ॐ अनन्ताय नमः
ॐ पृथिव्यै नमः
ॐ सुधार्णवाय नमः
ॐ मणिद्वीपाय नमः
ॐ कल्पवृक्षाय नमः
ॐ चिन्तामणिगृहाय नमः
ॐ हेमपीठाय नमः

इत्युपर्युपरि एकैकस्याधारभूतानां पूजनम् ।

तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय कल्पान्ते दहनोपम ।
भैरवाय नमस्तुभ्यं अनुज्ञां दातुमर्हसि ॥ १ ॥

इति भैरवाज्ञां गृहीत्वा–

अपसर्पन्तु ये भूता ये भूता भुविसंस्थिताः ।
ये भूताः विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥ २ ॥

अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतो दिशः ।
सर्वेषामविरोधेन न्यासपूजां समारभेत् ॥३ ॥

ततः क्षेत्रपालान्नत्वा । ॐ क्षेत्रपालाय नमः । ॐ पृथ्वीत्यासन-मन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः । सुतलं छन्दः । कूर्मो देवता । आसने विनियोगः ।

ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता ।
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम् ॥ ४ ॥

इति पृथ्वीं संप्रार्थ्य । ॐ अनन्ताय नमः । ॐ कूर्माय नमः । ॐ विमलाय नमः । ॐ योगपीठाय नमः ।

ॐ कूर्माय नमः नाभौ
ॐ आधारशक्तये नमः हृदि
ॐ पृथिव्यै नमः शिखायै
ॐ धर्माय नमः दक्षांसे
ॐ ज्ञानाय नमः वामांसे
ॐ वैराग्याय नमः दक्षोरौ
ॐ ऐश्वर्याय नमः वामोरौ
ॐ धर्माय नमः मुखे
ॐ अज्ञानाय नमः वामपार्श्वे

ॐ वैराग्याय नमः नाभौ
ॐ अनैश्वर्याय नमः दक्षपार्श्वे
ॐ अनन्ताय नमः कट्याम्
ॐ सर्वतत्वात्मकाय नमः
ॐ आनन्दमयकन्दाय नमः
ॐ संविन्नालाय नमः
ॐ विकारमयकेशरेभ्यो नमः
ॐ प्रकृतिमयपत्रेभ्यो नमः
ॐ पंचाशद्वर्णबीजाढ्यकर्णिकायै नमः ।

ॐ मध्ये परम सुखासनाय नमः । इति आसनं संप्रार्थ्य पूजयित्वा–
ॐ गुरुभ्यो नमः । ॐ पं परम गुरुभ्यो नमः । ॐ पं परात्पर गुरुभ्यो नमः । ॐ पं परमेष्ठि गुरुभ्यो नमः । ॐ परापर गुरुभ्यो नमः ॥

पश्चात् विधिवत् कलशस्थापनं । शंखस्थापनं । पात्रस्थापनं । ततो मानसीं पूजां कृत्वा वहिः पूजामारभेत् ।

धमकन्द समुदभूतं ज्ञान नाल सुशोभितम् ।
ऐश्वर्याष्ट दलोपेतं परं वैराग्य कर्णिकम् ।।५।।

तस्मिन्पीठे चिदात्मानं ध्यात्वा पूजां समारभेत्–

अथ स्थापनानुक्रम:

ॐ कालाग्नि रुद्राय नम: स्वाधिष्ठाने
ॐ कूर्माय नम: नाभौ
ॐ आधारशक्तये नमः हृदि
ॐ पृथिव्यै नम: शिखायै
ॐ धर्माय नम: दक्षांसे
ॐ ज्ञानाय नम: वामांसे
ॐ वैराग्याय नम: दक्षोरौ
ॐ ऐश्वर्याय नमः वामोरौ
ॐ धर्माय नम: मुखे
ॐ अज्ञानाय नमः वामपार्श्वे
ॐ वैराग्याय नम: नाभौ
ॐ अनैश्वर्याय नम: दक्षपार्श्वे
ॐ अनन्ताय नम: कट्याम्
ॐ सर्वतत्वात्मकाय नमः
ॐ आनन्दमयकन्दाय नम:
ॐ सविन्नालाय नम:
ॐ विकारमय केशरेभ्यो नम:
ॐ प्रकृतिमय पत्रेभ्यो नम:
ॐ पञ्चाशद्वर्ण बीजाढ्य कर्णिककायै नम: ।

अथ सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नम:, इति उपर्युपरि पूजनम्–

अथ द्वादशकला पूजनम्

ॐ तपिन्यै नमः
ॐ तापिन्यै नम:
ॐ ज्वालिन्यै नम:
ॐ रुच्यै नम:
ॐ सूक्ष्मायै नम:
ॐ भोगिन्यै नम:
ॐ विश्वायै नम:
ॐ धूम्रायै नम:
ॐ मरीच्यै नम:
ॐ बोधिन्यै नम:
ॐ धारिण्यै नम:
ॐ क्षमायै नम:

इत्युपर्युपरि प्रादक्षिण्येन द्वादशकलां पूजयेत् ।

अथ सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नम:, इति पूजनम् —

अथ षोडशकला पूजनम्

ॐ अमृतायै नमः
ॐ मानदायै नमः
ॐ पूषायै नमः
ॐ तुष्ट्यै नमः
ॐ पुष्ट्यै नमः
ॐ रत्यै नमः
ॐ धृत्यै नमः
ॐ शशिन्यै नमः
ॐ चंडिकायै नमः
ॐ काल्यै नमः
ॐ ज्योत्स्नायै नमः
ॐ श्रियै नमः
ॐ प्रीत्यै नमः
ॐ अंगदायै नमः
ॐ पूर्णायै नमः
ॐ पूर्णामृतायै नमः

इति प्रादक्षिण्येन पूजनम् ॥

ततो मध्ये मूर्ति निधाय चन्दनाक्षतान् गृहीत्वा ततः स्थापित देवतानां पूजनम् ।

चतुर्भुजं त्रिनेत्रं च नागयज्ञोपवीतिनम् ।
गजाननमुमापुत्रं गणपमावाहयाम्यहम् ॥६॥

आग्नेयां गणपतिं आवाहयामि स्थापयामि ।

पद्मासनसमारूढां श्वेताम्बरधरां शिवाम् ।
सरस्वतीं सरोजाक्षीं देवीमावाहयाम्यहम् ॥७॥

नैऋत्ये सरस्वतीं आवाहयामि स्थापयामि ।

शक्त्याद्यायुधसंपूर्णां सालंकारां स्वरूपिणीम् ।
सिंहारूढां दशभुजां दुर्गामावाहयाम्यहम् ॥८॥

वायव्यां दुर्गां आवाहयामि स्थापयामि ।

उर्ध्वकेशं श्यामवर्णं भ्रुकुटी कुटिलाननम् ।
क्षेत्रपालं चर्मचापधरमावाहयाम्यहम् ॥९॥

ईशान्यां क्षेत्रपालं आवाहयामि स्थापयामि ।

मध्ये श्रीकृष्णपंचकं स्थापयेत्-

वसुदेवसुतं देवं सुन्दरं रुक्मिणीप्रियम् ।
गोपीजनानन्दकरं कृष्णमावाहयाम्यहम् ॥१०॥

मध्ये श्रीकृष्णं आवहयामि स्थापयामि । तत्पुरुत: वासुदेवाय नमः वासुदेवं आवाहयामि स्थापयामि । तद्दक्षिणे संकर्षणाय नमः संकर्षणं आवाहयामि स्थापयामि । तत्पश्चिमे प्रद्युम्नाय नमः प्रद्युम्नं आवाहयामि स्थापयामि । तदुत्तरे अनिरुद्धाय नमः अनिरुद्धं आवाहयामि स्थापयामि । इति श्रीकृष्णपंचक स्थापनम् ।

श्रीकृष्णस्य दक्षिणभागे वेदव्यासपंचकं स्थापयेत् । तद्यथा–

फुल्लारविन्दनयनं महाभागवतोत्तमम् ।
कविज्ञानप्रकाशं च व्यासमावाहयाम्यहम् ॥११॥

व्यासाय नमः वेदव्यासं आवाहयामि स्थापयामि । तत्पूर्वे वैशंपायनाय नमः वैशंपायनं आवाहयामि स्थापयामि । तद्दक्षिणे सुमंताय नमः सुमंतं आवाहयामि स्थापयामि । तत्पश्चिमे जेमिनये नमः जेमिनिं आवाहयामि स्थापयामि । तद्वामे पैलाय नमः पैलं अवाहयामि स्थापयामि ।

॥ इति व्यासपंचक स्थापनम् ॥

श्रीकृष्णस्य वामभागे शंकराचार्यपंचकस्थापनम्–

परात्परतरज्ञानं जितक्रोधं जितेन्द्रियम् ।
शंकराचार्यमात्मज्ञं मुनिमावाहयाम्यहम् ॥१२॥

श्रीशंकराचार्याय नमः शंकराचार्यं आवाहयामि स्थापयामि । तत्पूर्वे विश्वरूपाचार्याय नमः विश्वरूपाचार्यं आवाहयामि स्थापयामि । तद्दक्षिणे पद्मपादाचार्याय नमः पद्मपादाचार्यं आवाहयामि स्थापयामि । तत्पश्चिमतः गौडपादाचार्याय नमः गौडपादाचार्यं आवाहयामि स्थापयामि । तत्पूर्वे हस्तामलकाचार्याय नमः हस्तामलकाचार्यं आवाहयामि स्थापयामि । तद्वामे त्रोटकाचार्याय नमः त्रोटकाचार्यं आवाहयामि स्थापयामि ।

॥ इति शंकराचार्यपंचक स्थापनम् ॥

श्रीकृष्णस्य पश्चिमभागे सनकादीन्स्थापयेत्—

दिगम्बरं कुमारं च विधिमानसनन्दनम् ।
सनकं परवैराग्यं मुनिमावाहयाम्यहम् ॥१३॥

श्री सनकाय नमः सनकं आवाहयामि स्थापयामि ।
तत्पूर्वे सनन्दनाय नमः सनन्दनं आवाहयामि स्थापयामि ।
तद्दक्षिणे सनातनाय नमः सनातनं आवाहयामि स्थापयामि ।
तत्पश्चिमतः सनत्कुमाराय नमः सनत्कुमारं आवाहयामि स्थापयामि ।
तद्वामतः सनत्सुजाताय नमः सनत्सुजातं आवाहयामि स्थापयामि ।

॥ इति सनकादिपंचकम् ॥

श्रीशंकराचार्यस्य पूर्वभागे-

दत्तात्रेयाय नमः दत्तात्रेयं आवाहयामि स्थापयामि ।
जीवन्मुक्ताय नमः जीवन्मुक्तं आवाहयामि स्थापयामि ।
विधातृतनयं, नारदं, वामदेवं, कपिलं आवहयामि स्थापयामि ।

अष्टदलेषु--

असितांगभैरवाय नमः असितांगभैरवं आवाहयामि स्थापयामि ।
रुरुभैरवाय नमः रुरुभैरवं आवाहयामि स्थापयामि ।
चंडभैरवाय नमः चंडभैरवं आवाहयामि स्थापयामि ।
क्रोधभैरवाय नमः क्रोधभैरवं आवाहयामि स्थापयामि ।
उन्मत्तभैरवाय नमः उन्मतभैरवं आवाहयामि स्थापयामि ।
कपालिभैरवाय नमः कपालिभैरवं आवाहयामि स्थापयामि ।
भीषणभैरवाय नमः भीषणभैरवं आवाहयामि स्थापयामि ।
संहारभैरवाय नमः संहारभैरवं आवाहयामि स्थापयामि ।

श्रीकृष्णस्य पूर्वभागे गुरुपंचकस्थापनम्-

क्षौमद्वयेन शोभन्तं प्रफुल्लेन्दीवरार्चितम् ।
शुद्धं स्फटिकसंकाशं गुरुमावाहयाम्यहम् ॥१४॥

गुरवे नमः गुरुं आवाहयामि स्थापयामि। तत्पुरतः परम गुरवे नमः परमगुरुं आवाहयामि स्थापयामि। तद्दक्षिणे परात्पर गुरवे नमः परात्परगुरुं आवाहयामि स्थापयामि। तत्पश्चिमतः परमेष्ठिगुरवे नमः परमेष्ठिगुरुं आवाहयामि स्थापयामि। तद्वामे परगुरवे नमः परगुरुं आवाहयामि स्थापयामि।

सदाशिवाय नमः। ईश्वराय नमः। विष्णवे नमः। ब्रह्माचार्याय नमः। नकुलाचार्याय नमः। गौरीशाचार्याय नमः। अर्चिषाचार्याय नमः। मैत्रेयाचार्याय नमः। कपिलाचार्याय नमः। सिद्धशांतनाचार्याय नमः। अगस्त्याचार्याय नमः। पिंगाक्षाचार्याय नमः। मनुगणाचार्याय नमः। पुष्पदन्ताचार्याय नमः। शान्तनाचार्याय नमः। विद्याचार्याय नमः। पंचधाचार्याय नमः। व्रताचार्याय नमः। दुर्वासाचार्याय नमः। कौडिन्याचार्याय नमः। कौशिकाचार्याय नमः। भैरवाष्टकाचार्याय नमः। एकाक्षराचार्याय नमः। विश्वनाथाचार्याय नमः। सोमेश्वराचार्याय नमः। वशिष्ठाचार्याय नमः। वाल्मीक्याचार्याय नमः। अत्र्याचार्याय नमः। गर्गाचार्याय नमः। पराशराचार्याय नमः। वेदव्यासाचार्याय नमः। शुक्राचार्याय नमः। गौडपादाचार्याय नमः। गोविन्दाचार्याय नमः। शंकराचार्याय नमः। रामानन्दाचार्याय नमः। रामानुजाचार्याय नमः। हयग्रीवाचार्याय नमः। सच्चिदानन्दाचार्याय नमः। दामोदराचार्याय नमः। वैष्णवाचार्याय नमः। सुश्रुताचार्याय नमः। चरकाचार्याय नमः। वाग्भटाचार्याय नमः। नागार्जुनाचार्याय नमः। नित्यनाथाचार्याय नमः। धन्वन्तराचार्याय नमः।

अथ दशदिक्षु शक्तिः पूजयेत्-

ऐन्द्र्यै नमः। कौमार्यै नमः। ब्राह्म्यै नमः। चामुण्डायै नमः। वष्णव्यै नमः। माहेश्वर्यै नमः। वैनायक्यै नमः। कुबेर्यै नमः। तारुण्यै नमः।

श्रीकृष्णस्य पुरतः अष्टवसून्पूजयेत्-

धाराय नमः। ध्रुवाय नमः। सोमाय नमः। विष्णवे नमः। अनिलाय नमः। अनलाय नमः। प्रत्यूषाय नमः। प्रभासाय नमः।

सोमेशानयोर्मध्ये एकादशरुद्रान् पूजयेत्–

वीरभद्राय नमः। गिरीशाय नमः। महेशाय नमः। अजिकपर्दिने नमः। अहिर्बुध्नाय नमः। पिनाकिने नमः। अपराजिताय नमः। भुवनाधीश्वराय नमः। कपालिने नमः। विशांपतये नमः। स्थाणवे नमः।

आचार्यपंचकस्थापनम्

श्रीकृष्णस्य उत्तरभागे आचार्यपंचकं स्थापयेत्–

ज्ञानविज्ञानसम्पन्नं योगासीनं तपोधनम्।
गोविन्दाचार्यं वादीन्द्रं सिद्धमावाहयाम्यहम् ॥१५॥

गोविन्द भगवत् पूज्यपादाचार्येभ्यो नमः, गोविन्द भगवत्पूज्यपादाचार्यान् आवाहयामि स्थापयामि। तत्पूर्वे गौड़पादाचार्येभ्यो नमः गौड़पादाचार्यान् आवाहयामि स्थापयामि। तद्दक्षिणे द्राविणाचार्येभ्यो नमः द्राविणाचार्यान् आवाहयामि स्थापयामि। तत्पश्चिमे विवर्णाचार्येभ्यो नमः विवर्णाचार्यान् आवाहयामि स्थापयामि। तद्वामतः समस्तविद्यासम्प्रदायप्रवर्त्तकाचार्येभ्यो नमः, समस्तविद्यासम्प्रदायप्रवर्तकाचार्यान् आवाहयामि स्थापयामि।

श्रीरामपंचकस्थापनम

श्रीकृष्णस्य ईशानभागे श्रीरामपंचकं स्थापयेत्–

श्रीरामाय नमः रामं आवाहयामि स्थापयामि। तत्पूर्वे लक्ष्मणाय नमः लक्ष्मणं आवाहयामि स्थापयामि। तद्दक्षिणे भरताय नमः भरतं आवाहयामि स्थापयामि। तत्पश्चिमे शत्रुघ्नाय नमः शत्रुघ्नं आवाहयामि स्थापयामि। तद्वामे सीतायै नमः सीतां आवाहयामि स्थापयामि। ततः इन्द्रादीन्लोकपालान् स्वे स्वे स्थाने पूजयेत्–

चतुर्दन्त गजारूढं वज्रांकुशधरं विभुम्।
शचीपतिं सहस्राक्षं इन्द्रमावाहयाम्यहम् ॥१६॥

पूर्वे इन्द्रं आवाहयामि स्थापयामि।

स्वर्णवर्णं स्रुवहस्तं द्विशीर्षं च त्रिपादकम् ।
मेषारूढं चतुःशृंगं अग्निमावाहयाम्यहम् ॥१७॥
आग्नेयां अग्निं आवाहयामि स्थापयामि ।

कृष्णवर्णं दंडधरं माद्यन्महिषवाहनम् ।
रक्तेक्षणं भीमरूपं यममावाहयाम्यहम् ॥१८॥
दक्षिणे यमं आवहयामि स्थापयामि ।

ऊर्ध्वकेशं नीलवर्णं नैऋतिं नरवाहनम् ।
खड्गचर्मधरं कालीप्रियं आवाहयाम्यहम् ॥१९॥
नैऋत्यां निऋतिं आवाहयामि स्थापयामि ।

नागपाशधरं रक्तभूषणं मीनवाहनम् ।
प्रचेतारं च पद्मिन्या प्रियमावाहयाम्यहम् ॥२०॥
पश्चिमे वरुणं आवाहयामि स्थापयामि ।

हेमध्वजधरं श्यामं कृष्णसारंगवाहनम् ।
जगत्प्राणं मोहिनीशं वायुमावाहयाम्यहम् ॥२१॥
वायव्यां वायुं आवाहयामि स्थापयामि ।

स्वर्णवर्णनिधीशानं सकुलं हयवाहनम् ।
पद्मासनसमासीनं निधिमावाहयाम्यहम् ॥२२॥
उत्तरे कुबेरं आवहयामि स्थापयामि ।

पंचवक्त्रं त्रिनेत्रं च भस्मोद्धूलितविग्रहम् ।
उमयासहितं देवं शिवमावाहयाम्यहम् ॥२३॥
ईशान्यां शिवं आवाहयामि स्थापयामि ।

पद्मासनसमासीनं कमंडलुधरं प्रभुम् ।
जगत्सृष्टिप्रकर्तारं विधिं आवाहयाम्यहम् ॥२४॥
ईशानपूर्वयोर्मध्ये ऊर्ध्वं ब्रह्माणं आवाहयामि स्थापयामि ।

शेषशय्यासमासीनं पीताम्बरधरं विभुम् ।
लक्ष्म्यालिंगितवामांगं विष्णुं आवाहयाम्यहम् ॥२५॥

नैऋतपश्चिमयोर्मध्ये अनन्तं आवाहयामि स्थापयामि ।
अनन्तस्य दक्षिणतः आत्मपंचकं पूजयेत्–

आत्मने नमः आत्मानं आवाहयामि पूजयामि । तद्दक्षिणतः अन्तरात्मने नमः अन्तरात्मानं आवाहयामि पूजयामि । तत्पूर्वे परमात्मने नमः परमात्मानं आवाहयामि पूजयामि । तत्पश्चिमे सत्यात्मने नमः तदग्रे सत्यात्मानं आवाहयामि पूजयामि । तद्वामे सर्वात्मने नमः सर्वात्मानं आवाहयामि पूजयामि ।

इन्द्रेशानयोर्मध्ये शुक्रं स्थापयेत्–

जीवन्मुक्तं सुखासीनं योगिनं व्यासनन्दनम् ।
अध्यात्मज्ञानसम्पन्नं शुक्रं आवाहयाम्यहम् ॥२६॥

शुक्रं आवाहयामि स्थापयामि ।

तद्दक्षिणतः नारदं स्थापयेत्–

विधातृतनयं श्रेष्ठं सर्वदा कलहप्रियम् ।
नारदं वीणयोपेतं मुनिमावाहयाम्यहम् ॥२७॥

नारदं आवाहयामि स्थापयामि । ततः प्रतिष्ठा । ततः स्थापित देवतानां गंधाक्षतपुष्पैस्तत्तन्नामभिः पूजनम् । मध्ये षोडशोपचारान् कृत्वा स्तुतिपाठः कार्यः ।

इन्द्रेशानयोर्मध्ये द्वादशादित्यान्पूजयेत्–

धात्रे नमः पूजयामि । अर्यमणे नमः पूजयामि । मित्राय नमः पूजयामि । वरुणाय नमः पूजयामि । ईशानाय नमः पूजयामि । भर्गाय नमः पूजयामि । इन्द्राय नमः पूजयामि । विवश्वते नमः पूजयामि । पूष्णे नमः पूजयामि । पर्जन्याय नमः पूजयामि । विष्णवे नमः पूजयामि । रुद्राय नमः पूजयामि ।

पश्चिमनैऋतयोर्मध्ये सप्त यक्षान् पूजयेत् । नैऋतवरुणयोर्मध्ये नवनागान् पूजयेत् । वरुणवाय्वोर्मध्ये गंधर्वान् अप्सरसः पूजयेत् । ब्रह्मसोममध्ये स्कन्दं पूजयेत् । ब्रह्मरुद्र मध्ये दुर्गां पूजयेत् । ब्रह्माग्नि मध्ये स्वधां पूजयेत् । रोगाय नमः । ब्रह्मेशान मध्ये गणेशान् पूजयेत् ।

ब्रह्मनैऋतमध्ये अद्भ्यो नमः । ब्रह्मयममध्ये मृत्युं पूजयेत् । ब्रह्मवायुमध्ये सप्तमरुतेभ्यो नमः । इति पूजयेत् ।

ब्रह्मणः पादमूले मूलप्रकृत्यै नमः । आधारशक्तये नमः । कूर्माय नमः । अनन्ताय नमः । पृथिव्यै नमः । श्वेतद्वीपाय नमः । कल्पवृक्षाय नमः । रत्नमंडपाय नमः । रत्नसिंहासनाय नमः ।

ब्रह्मणः पश्चिमे सप्तनदी–सप्तसागरान् पूजयेत्–

गंगायै नमः पूजयामि । यमुनायै नमः पूजयामि । गोदावर्यै नमः पूजयामि । सरस्वत्यै नमः पूजयामि । नर्मदायै नमः पूजयामि । तुंगभद्रायै नमः पूजयामि । कावेर्यै नमः पूजयामि । लवण समुद्राय नमः पूजयामि । इक्षु समुद्राय नमः पूजयामि । सुरा समुद्राय नमः पूजयामि । घृत समुद्राय नमः पूजयामि । दधि समुद्राय नमः पूजयामि । क्षीर समुद्राय नमः पूजयामि । शुद्धजल समुद्राय नमः पूजयामि ।

तदुपरि नाममंत्रेण पर्वतान् पूजयेत्–

मेरु पर्वताय नमः । हिमवान पर्वताय नमः । हेम पर्वताय नमः । निषध पर्वताय नमः । नील पर्वताय नमः । शुक्ल पर्वताय नमः । मलय पर्वताय नमः । गंधमादन पर्वताय नमः । माल्यवान पर्वताय नमः ।

सौम्यादि क्रमेण तद्वाह्ये उत्तरे गौतमाय नमः । ईशाने भारद्वाजाय नमः । पूर्वे विश्वामित्राय नमः । दक्षिणे जमदग्नये नमः । नैऋत्यां वशिष्ठाय नमः । पश्चिमे अत्रये नमः । वायव्ये अरुन्धत्यै नमः । तद्बाह्ये पूर्वादि क्रमेण-ऐन्द्र्यै नमः । कौमार्यै नमः । ब्राह्म्यै नमः । वाराह्यै नमः । चामुण्डायै नमः । वैष्णव्यै नमः । माहेश्वर्यै नमः । वैनायक्यै नमः । इत्यष्टदिक्षु ।

ततो नवग्रहान् पूजयेत् । मध्ये सूर्यं पूजयेत् । ततो दिक्पतीन् पूजयेत् —

पूर्वे इन्द्राय नमः । अग्नौ अग्नये नमः । दक्षिणे यमाय नमः । नैर्ऋत्यां नैर्ऋताय नमः ।। पश्चिमे वरुणाय नमः । वायव्ये वायवे नमः । उत्तरे कुबेराय नमः । ईशाने रुद्राय नमः । उर्ध्वे ब्रह्मणे नमः । अधः विष्णवे नमः ।

ततः आयुधानि पूजयेत्-

वज्राय नमः । शक्तये नमः । दंडाय नमः । खड्गाय नमः । पाशाय नमः । अंकुशाय नमः । गदायै नमः । त्रिशूलाय नमः । पद्माय नमः । चक्राय नमः ।

ततो वाहनानि पूजयेत्-

ऐरावताय नमः । मेषाय नमः । महिषाय नमः । प्रेताय नमः । मकराय नमः । मृगाय नमः । शिविकायै नमः । वृषभाय नमः । हंसाय नमः । गरुणाय नमः । मध्ये कलशाधिष्ठातृदेवताभ्यो नमः ।

ततो न्यासाः-

ॐ अतो देवाऽवंतु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्या सप्त धामभिः ॥
इति हृदयाय नमः ॥

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदं । समूढमस्य पाᳬसूरे ॥
इति शिरसे स्वाहा ॥

ॐ त्रीणिपदा विचक्रमे विष्णुर्गोपाऽअदाभ्यः । अतो धर्माणि धारयन् ॥
इति शिखायै वषट् ॥

ॐ विष्णो कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥
इति कवचाय हुं ॥

ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदो पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततं ॥
इति नेत्रत्रयाय वौषट् ॥

ॐ तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांशः समिधते । विष्णोर्यत्परमं पदं ॥
इति अस्त्राय फट् ॥

ततः स्थापितदेवतानां पृथक् पृथक् विशेष पूजनम् । प्रति देवतां गंधाक्षत पुष्पैः पूजयेत्-

आग्नेय्यां गणपतये नमः
नैऋत्यां सरस्वत्यै नमः
वायव्यां दुर्गायै नमः
ईशान्यां क्षेत्रपालाय नमः
मध्ये श्रीकृष्णाय नमः
तत्पुरतो वासुदेवाय नमः
तद्दक्षिणे संकर्षणाय नमः
तत्पश्चिमे प्रद्युम्नाय नमः
तद्वामे अनिरुद्धाय नमः
श्रीकृष्णस्य दक्षिणे वेदव्यासाय नमः
व्यासस्य पुरोभागे वैशंपायनाय नमः
व्यासस्य दक्षिणे सुमन्ताय नमः
व्यासस्य पश्चिमे जेमिनये नमः
व्यासस्य वामे पैलाय नमः
श्रीकृष्णस्य वामे शंकराचार्येभ्यो नमः
तत्पुरो भागे विश्वरूपाचार्येभ्यो नमः
तत्पुरो दक्षिणे पद्मपादाचार्येभ्यो नमः
तत्पुरो पश्चिमे गौडपादाचार्येभ्यो· नमः
तत्पुरोवामे विवर्णाचार्येभ्यो नमः
श्रीकृष्णस्य पश्चिमे सनकाय नमः
तत्पूर्वे सनन्दनाय नमः
तत्पूर्वे दक्षिणे सनातनाय नमः

तत्पूर्वे पश्चिमे सनत्कुमाराय नमः
तत्पूर्वे वामे सनत्सुजाताय नमः
श्रीकृष्णस्य पूर्वभागे गुरवे नमः
श्रीकृष्णस्य पुरतः परम गुरवे नमः
श्रीकृष्णस्य दक्षिणे परमेष्ठिगुरवे नमः
श्रीकृष्णस्य उत्तरे परात्परगुरवे नमः
श्रीकृष्णस्य वामे परात्पर गुरवे नमः
श्रीकृष्णस्य उत्तरे गोविन्द भगवत-पूज्यपादाचार्येभ्यो नमः
तत्पुरतः गौडपादाचार्येभ्यो नमः
,, दक्षिणे द्रविणाचार्येभ्यो नमः
,, पश्चिमे विवर्णाचार्येभ्यो नमः
,, वामे समग्रविद्या संप्रदाय-प्रवर्तकाचार्येभ्यो नमः
पूर्वे इन्द्राय नमः
आग्नेय्यां अग्नये नमः
दक्षिणे यमाय नमः
नैऋत्यां निऋतये नमः
पश्चिमे वरुणाय नमः
वायव्यां वायवे नमः
उत्तरे कुबेराय नमः
ईशान्यां ईशानाय नमः
ऊर्ध्वं ब्रह्मणे नमः
अधः विष्णवे नमः

विष्णो: दक्षिणे आत्मने नम: तस्य दक्षिणे अन्तरात्मने नम:
तस्य दक्षिणे परमात्मने नम: इन्द्रेशानयोर्मध्ये शुक्राय नम:
दक्षिणे नारदाय नमः
इति गंधाक्षतपुष्पै: संपूज्य पुष्पांजलिं दद्यात् ॥

लक्ष्मीकलत्रं शतपत्रनेत्रं पूर्णेन्दुवक्त्रं पुरहूतमित्रम् ।
कारुण्यपात्रं कमनीयगात्रं वन्दे पवित्रं वसुदेवपुत्रम् ॥२८॥
ॐ नमो वासुदेवाय शुद्धरूपस्वरूपिणे ।
हिरण्यरेतसे तुभ्यं प्रधानाव्यक्तरूपिणे ॥२९॥
नमोस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे ।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणे नम: ॥३०॥
कामरूपं कलावन्तं कामिनीकामदं प्रभुम् ।
मन्मथं मथुरानन्दं प्रद्युम्नं प्रणमाम्यहम् ॥३१॥
अनिरुद्धं महोदारं कामिनीसुन्दरं प्रियम् ।
नमाम्यहं पद्मनेत्रं फुल्लेन्दीवरलोचनम् ॥३२॥

तद्विष्णो: परमं पदमिति मंत्रेण प्रणवेन वा पुष्पांजलित्रयं दद्यात् ।
॥ इति श्रीकृष्णपंचक पुष्पांजलिः ॥

अथ व्यासपंचक पुष्पांजलि:

वेदव्यासं श्यामरूपं सत्यसंधं परायणम् ।
शान्तेन्द्रियं जितक्रोधं सशिष्यं प्रणमाम्यहम् ॥३३॥
अनेन मंत्रेण पुष्पांजलित्रयं दद्यात् । इति व्यासपंचक पुष्पांजलि: ।

अथ शंकराचार्यपंचक पुष्पांजलि:

सर्वशास्त्रार्थतत्वज्ञं परमानन्दविग्रहम् ।
ब्रह्मण्यं शंकराचार्यं प्रणमामि विवेकिनम् ॥३४॥
परात्परतरं शान्तं योगीन्द्रं योगसेविनम् ।
शान्तेन्द्रियं जितक्रोधं सशिष्यं प्रणमाम्यहम् ॥३५॥
इति मंत्राभ्यां पुष्पांजलित्रयं दद्यात् ।

अबीरं गुलालं धूपं दीपं फलार्घ्यं दक्षिणा नैवेद्यानि नाना-विधानि दद्यात् । कर्पूरेणारार्तिकम् । ततो गृहस्थः विधिपुरःसरं सर्वान् यतीन् षोडशोपचारैः पूजयेत् । अबीर, गुलाल, धूप, दीप, फलार्घ्य, नैवेद्य, दन्तधावन, मृत्तिका, गोपीचन्दन, सुखड, केशर, कोपीन, पछेड़ो, वहिर्वास, पट्टकूल, कटिसूत्र, दंड, कमंडलु, मुखवास, लवंग, सुंठ, हरडे इत्यादीनि सर्वाणि वस्तूनि समर्पयेत् । समर्चयित्वा गुलाल, अवीर, पुष्पमालादिभिः भूषयित्वा नीराजनं आरार्तिकं कृत्वा पुष्पांजलिं दत्वा संकल्पं कारयेत् यतिः ।

अंडजैरुद्भिजैर्वापि प्राणिभिर्व्याप्यते मही ।
सूक्ष्मैर्व्यक्तैर्नानारूपैः समन्ततः ॥३६॥
एतेषां रक्षणार्थाय आषाढ्यां दिवसे यतिः ।
असति प्रतिबन्धे तु चातुर्मासांश्चवार्षिकान् ॥३७।
निवसामीति संकल्प्य मनसा बुद्धिपूर्वकम् ।
प्रायेण प्रावृषि प्राणसंकुलं वर्त्म दृश्यते ॥३८॥
अतस्तेषामहिंसार्थं पक्षान्वै श्रुतिसंमतान् ।
स्थास्यामि चतुरो मासान्सर्वभूत हिताय वै ॥३९॥
जले जीवाः स्थले जीवा आकाशे जीवमालिका ।
जीवमाला कुले लोके वर्षास्वेकत्र संवसेत् ।४०॥
स्वापं यास्यति शेषांके लक्ष्म्या सह जगत्पतिः ।
शेषपर्यंक वर्येस्मिन्फणामणि गणालये ॥४१॥
श्वेतद्वीपान्तरे देव कुरुनिद्रां नमोऽस्तु ते ।
सुप्ते त्वयि जगन्नाथे जगत्सुप्तं भवेदिति ॥४२॥
विबुद्धे च विबुद्ध्येत् प्रसन्नो मे भवाव्यय ।
स्थास्यामि चतुरो मासान् अत्रैवासति बोधके ॥४३॥
सुप्तश्चैवोत्थितो यावत् न भवेद्धि सनातनः ।
श्वेतद्वीपे भोगिनाथे योगिनाथे स्थिते सति ॥४४॥
चातुर्मास्यव्रतानुज्ञां देहि लक्ष्मीपते मम ।
चतुरो वार्षिकान्मासान् देवस्योत्थापनावधि ॥४५॥

इमं करिष्ये नियमं निर्विघ्नं कुरु मे व्रतम् ।
इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव ॥४६॥
सर्वं निर्विघ्नमायातु प्रसादात्ते रमापते ।
सुप्तश्चैवोत्थितो यावत् देवदेवं सनातन ॥४७॥
अहं तावद्वसामीह सर्वभूत हिताय वै ।
आज्ञया ब्राह्मणानां च ज्ञानविज्ञानसंविदाम् ॥४८॥
उक्तवन्तमिति ब्रूयुः पार्श्वस्था ये द्विजोत्तमाः ।
निवसन्तु सुखेनात्र गमिष्यामः कृतार्थताम् ॥४९॥
यथाशक्ति च सुश्रूषां करिष्यामो वयं मुदा ।
निवासाद् भवतामत्र सदानन्दो भविष्यति ॥५०॥

ततस्तुलसीदलं गृहीत्वा स्वस्तिवाचनं अभिषेकः आशीर्वादः दक्षिणासंकल्पः ।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
तेहनाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥

॥ विसर्जनम् ॥

श्रीकृष्ण उवाच

यत्रभिक्षुरहं तत्र स्थितं मां विद्धि पाण्डव ।
पूजिते पूजितोऽहं वै पूजिताः सर्वदेवताः ॥५१॥

॥ इति व्यासपूजा गुरुपूजा समाप्ता ॥

(संवत् १९१० ना श्रवणशुद ११ सोमे ले० व्यास नानावनमाली प्रतिलिपि राजवैद्य जी० का० शास्त्री संवत् २०१० ना ज्येष्ठ शुक्ल १४ भौमे रात्रौ ११ वादनावसरे गोंडलमध्ये ॥)

–:०:–